

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

**TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182298

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No.

H82
78 G

Accession No.

Author

रसज्ञानी विनेय

H2650

Title

गोप्य का दान

This book should be returned on or before the date last marked below.

गोपा का दान

गोपा का दान

(रेडियो-नाटक-संग्रह)

नाटककार

बिनोद रस्तोगी

नवयुग प्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक :—

नवयुग प्रकाशन

२८१, चावडी बाजार

दिल्ली ।

प्रथम संस्करण

अगस्त, उन्नीस सौ सत्तावन ।

मूल्य—तीन रुपये पच्चेत्तर नये पैसे ।

मुद्रक.—

दीपक प्रेस

दिल्ली ।

दो शब्द

उस दिन एक साहित्यिक बन्धु का पत्र मिला । पूछा था—आकाशवाणी, लखनऊ से प्रसारित श्री.....का रेडियो नाटक.....सुना ? कैसा लगा ? मैंने उत्तर दे दिया कि वह नाटक रेडियो-नाटक था ही नहीं । वास्तव में वह नाटक एकांकी-नाटक था और एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित भी हो चुका था ।

एकांकी-नाटक और रेडियो-नाटक में कोई अन्तर नहीं, ऐसी भ्रान्त धारणा अकारण नहीं है । हमारे कुछ धुरन्धर नाटककार अपनी एक ही रचना को एकांकी-नाटक के नाम से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और रेडियो-नाटक के नाम से आकाश-वाणी द्वारा प्रसारित कराते हैं । नाटककारों को इससे दोहरा आर्थिक लाभ होता है, परन्तु वे अपने इस कृत्य द्वारा रेडियो-नाटक का कितना अहित करते हैं, इस पर उनका ध्यान नहीं जाता । और मजा यह है कि हमारे विद्वान समा-लोचक उन्हीं नाटककारों को प्रमुख एकांकीकार भी मानते हैं और सफल रेडियो-नाटककार भी ।

वस्तुतः रेडियो-नाटक साहित्य का एक अभिन्न अंग है । उसका शिल्प-विधान एकांकी-नाटक के शिल्प-विधान से सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र है । एक एकांकी-नाटक को हम थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ रेडियो द्वारा भले ही प्रसारित कर लें, परन्तु एक रेडियो-नाटक को मंच पर अभिनीत करना असम्भव है ।

प्रस्तुत संग्रह के नाटक रेडियो-नाटक के शिल्प-विधान को दृष्टि में रखकर ही लिखे गये हैं । अधिकांश नाटक आकाश-वाणी के केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं । 'गोपा का दान' का अनुवाद गुजराती में हुआ है । 'अंधेरा, फिसलन और पाँव' को आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली द्वारा आयोजित अखिल भारतीय रेडियो नाटक प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था । आशा है, इन नाटकों को पढ़ने में भी आपको वैसा ही आनन्द आयेगा जैसा सुनने में आया था ।

स्वरूपनगर, ७/१४०,
कानपुर ।

विनोद रस्तोगी

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
१. अँधेरा, फिसलन और पाँव	...	१६
२. शैतान की बेटी	...	४७
३. खँडहरों की आत्मा	...	७१
४. सौदा	...	८३
५. नूरजहाँ	...	११७
६. बेला फूले आधी रात	...	१३१
७. चाँद वीची	...	१६६
८. गोपा का दान	...	१८३

अँधेरा फिसलन और पांव
(समस्या मूलक सामाजिक नाटक)

[प्रारम्भिक संगीत के बाद पृष्ठ भूमि से बरतनों की खड़-खड़ का स्वर उभरना है। सनीर ही दीवार घड़ी की टिक-टिक की ध्वनि।]

उषा—(ऊँचे स्वर में) सवा आठ बज गये और अभी तक चाय नहीं बन पायी तुम्हारी ? टोस्ट ज़रा ठीक से सेंकना, रामू ! प्रभा आयी है।

रामू—(दूर से) सब कुछ तैयार है बहू जी ! वस, अभी लाया एक मिनट में।

उषा—(हँस कर) इन नौकरों का एक मिनट भी एक घण्टे से कम नहीं होता, प्रभा !

प्रभा—(हँस कर) उनकी घड़ी “होम मेड” होती है, जीजी ! राज नहीं दिखाई देता। क्या चाय नहीं पियेगा ?

उषा—उसका नाम मेरे सामने न लिया करो। हम दोनों की नाक में दम कर रक्खा है उसने।

प्रभा—बच्चा है अभी।

उषा—२१-२२ साल का तो हो गया है और तुम्हारे लिये अभी बच्चा ही है !

प्रभा—(हँस कर) मेरे सामने तो बच्चे की तरह ही रहता है।

उषा—मौसी तो ठहरें। हम लोगों को तो समझता है कि कुत्ते भौंक रहे हैं।

रामू—(समीप आकर) यह लीजिये चाय, बहू जी !

[मेज पर ट्रे आदि रखने की आवाज़]

उषा—राज अभी उठा या नहीं ?

रामू—अभी तो सो रहे हैं छोटे बाबू। क्या जगादूँ ?

उषा—रहने दो। जाकर रसोई का सामान ठीक करो।

[प्याले, तश्तरी, चम्मच आदि रखने-उठाने का शब्द]

प्रभा—अभी तक सो रहा है राज ! क्या सिनेमा गया था ?

उषा—सिनेमा नहीं, क्लब गया था । रात को दो बजे आया है और वह भी शराब के नशे में चूर । आँखें लाल, बाल बिखरे, कपड़े अस्त-व्यस्त, तन-बदन की सुधि नहीं । (आर्द्र स्वर में) हम लोगों की सफेदी में स्याही लगाने पर तुला है ।

प्रभा—(आश्चर्य मिश्रित स्वर में) क्या पीने भी लगा है ?

उषा—करता क्या नहीं है । लड़ना, भगड़ना, शराब पीना, जुआ खेलना, चोरी करना, कोई भी कर्म नहीं बचा है उससे ।

प्रभा—(दुखी स्वर में) चोरी...

उषा—हाँ चोरी । ज़रा नज़र चुकी और पैसे गायब । (निःश्वास छोड़ कर) वह दिन दूर नहीं जब जेवरों पर भी हाथ साफ करने लगेगा ।

[प्याला रखने की आवाज़]

प्रभा - ऐसा न कहो जीजी !

उषा - क्यों न कहें ? सुनने वाले यही समझेंगे कि गोद लिया हुआ बच्चा है, इसीलिये दोष निकालती है । उसके कर्म कोई नहीं देखेगा । उनकी आधी से अधिक कमाई उसी के बिल अदा करने में चली जाती है । न जाने किस मनहूस घड़ी में बच्चा लाये थे घर । अब तो वह हाल है कि न थूकते बनता है, न निगलते ।

प्रभा—मैं यह सब नहीं जानती थी । मैं समझाऊँगी उसे ।

उषा—मैं तो उनसे पचास बार कह चुकी हूँ कि चाहे हर महीने कुछ रुपये दे दिया करो पर उसे इस घर से निकाल दो । पर वे सुनते ही नहीं । न जाने क्या मोह है उन्हें उससे ।

प्रभा—तुम्हीं ने तो बताया था कि उनके मित्र का लड़का है ।

बिचारों की पत्नी मर गयी, सो गोद ले लिया ! आखिर हैं कहाँ वे मित्र ?

उषा—(चोंक कर) मित्र ? अरे हाँ, उन्होंने तो न जाने कब का संन्यास ले लिया है । बहते पानी और जोगी का क्या ठिकाना ? न जाने कहाँ होंगे आजकल ।

सरला—(दूर से) मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

उषा—हाँ, हाँ ! आओ बेटी !

सरला—(पास आकर) मैं वरुण साहव की पत्नी से मिलना चाहती हूँ ।

उषा—वैठो, बेटी ! मैं ही हूँ उनकी पत्नी । क्या काम है ?

सरला—ओह ! तो आप हाँ हैं उषा देवी ! नमस्ते । मुझे आपसे कुछ जरूरी बात करनी है ।

उषा—वैठ जाओ । (कुर्सी खिसकने का स्वर) क्या कहना है ?
कोन हो तुम ? पहले तो यहाँ कभी नहीं आयीं ! क्या उनके किसी मित्र का पुत्रा हो ?

सरला—मुझे जो कुछ कहना है, एकान्त में कहूँगी ।

उषा—यह मेरी छोटी बहन हैं । जो कहना हो निःसंकोच कहो, बेटी !

सरला—(दृढ़ता से) मुझे जो कहना है, एकान्त में ही कहूँगी ।

उषा—लेकिन मेरी बहन.....

प्रभा—(मध्य में ही) ठीक है जीजी ! मैं जरा जा रही हूँ ऊपर ।
देखूँ, शायद राज जाग गया हो ।

[कुर्सी खिसकने का शब्द । प्रभा की पदचाप दूर जाती है]

उषा—चाय पियोगी, बेटी ?

सरला—मैं चाय पीने नहीं, अपना दुखड़ा रोने आयी हूँ ।

उषा—दुखड़ा रोने ?

सरला—हाँ ! मेरा नाम सरला है । बाहर से यहाँ पढ़ने आयी हूँ ।
 छात्रावास में रहती हूँ ।

उषा—ओह ! शायद तुम सहायता के लिए आयी हो । वकील
 साहब बाहर गये हैं । शाम तक आजायेंगे । तुम कल इसी
 समय आ जाना, बेटी । वे और कुछ नहीं तो फीस तो माफ़
 करा ही देंगे ।

सरला—(नीचे स्वर में) मैं भीख माँगने नहीं, अपना अधिकार
 माँगने आयी हूँ ।

उषा—मैं समझी नहीं तुम्हारा मतलब !

सरला—अभी समझ जायेंगी । आपके राज के ही साथ पढ़ती हूँ
 मैं ! उन्होंने मुझे धोखा दिया है, (आदर स्वर) मेरे नारी
 होने का अनुचित लाभ उठाया है । (सिसकियों)

उषा—(धीमे स्वर में) धोखा दिया है राज ने ? (निश्वास)
 ठहरो बेटी ज़रा । मैं प्रभा को बुला लूँ । (उच्च स्वर में) प्रभा !
 प्रभा !!

प्रभा—(दूर से) क्या है, जीजी ?

उषा—यहाँ आओ ज़रा । जल्दी ।

प्रभा—(दूर से पास आकर) क्या बात है जीजी ? वह लड़की चली
 गयी क्या ? (पास आकर) अरे ! यह तो बैठी हैं अभी ।

उषा—बैठ जाओ प्रभा ! (कुर्मी खिसकने का शब्द) इनका नाम
 सरला है । बोर्डिंग हाउस में रहती हैं । राज के साथ पढ़ती
 हैं । हाँ बेटी सरला, अब कहो क्या धोखा दिया है राज ने
 तुम्हें ?

सरला—पुरुष नारी को क्या धोखा दे सकता है ! (सिसकते हुये)
 प्रेम का प्रपंच रचकर सुनहले भविष्य के सपने दिखाकर,
 शादी का वचन देकर अब...अब...अब...छोड़ दिया है
 भँझधार में ।

प्रभा—(धीमे और कम्पित स्वर में) यह क्या कह रही हो, बेटी ?

सरला—(सिसकते हुये) खिलौने की तरह मेरे शरीर से खेला और...और...जब...जब मैं...माँ...(जोर की सिसकियों का स्वर)

उषा—हे भगवान ! क्या होने वाला है इस घर में प्रभा ! अरे ! तुम्हें क्या हो गया है ? चेहरा पीला क्यों पड़ गया है, उधर शून्य में क्या देख रही हो ?

प्रभा—(चौककर धीमे स्वर में) कुछ नहीं, जोजी, कुछ नहीं । यह सब क्या हो रहा है ? ऐसा अनर्थ नहीं होना चाहिये..... नहीं होना चाहिये ।

उषा—जब राज से तुमने यह सब बताया तो उसने क्या कहा ?

सरला—वही जो हर पुरुष कहता है । एक दम बदल गये, जैसे हमारा परिचय ही न हो । मुझे दुःकार दिया ।

प्रभा—(निश्वास छोड़ कर) यह तूने क्या किया राज ?

सरला—मैं निर्धन अग्रश्य हूँ पर बड़े आदमियों की वासना का साधन नहीं बन सकती । दूसरे दिन मैंने फिर उनसे कहा कि उन्हें भरे समाज में मुझे अपनाना होगा, वचन के अनुसार शादी करनी होगी, तब...तब...एक दवा दी उन्होंने मुझे । कहने लगे, इससे सब ठीक हो जायेगा । पाप का चिन्ह मिट जायेगा ।

प्रभा—(व्यग्र स्वर में) क्या तुमने वह दवा खाली ?

सरला—नहीं ! मैंने उसी समय इन्कार कर दिया । मैं आप लोगों से ही पूछती हूँ, मैं क्यों खाऊँ दवा ? यह पाप की सन्तान नहीं है । उनमें भले स्वार्थ हो, उन्होंने भले ही मुझे किसी भी दृष्टि से देखा हो, पर मैंने हमेशा उन्हें सच्चे दिल से प्यार किया है । नारी केवल एक बार आत्म-समर्पण करती है । खुले समाज में चाहे वे इस सन्तान को अपना कहकर

न अपना सकें पर मैं...मैं सबके सामने डंके की चोट पर कूँगी कि यह वच्चा उनका है, उनका है, उनका है ।

उषा—ऐसा न करना, बेटी ! हम कहीं के भी न रहेंगे । हमारी तो नाक ही कट जायेगी ।

सरला—आपकी नाक से अधिक मुझे अपना और इस होने वाले वच्चे का खयाल है । मैं नहीं चाहती कि लोग मुझे पापिन समझें और.....और इस वच्चे को वह कलंक जीवन भर ढोना पड़े । (मिसकियाँ)

प्रभा—(चीखकर) ऐसा नहीं होगा, बेटी, ऐसा नहीं होगा । मेरे रहते ऐसा कभी नहीं हो सकता । मैं अभी बुलाती हूँ राज को । (ऊँचे स्वर में) राज ! ओ राज !!

राज—(दूर से) क्या है, मौसो जी ?

प्रभा—यहाँ आओ, अभी, फौरन !

राज—(पास आता स्वर) तुम तो ऐसे बुला रही हो जैसे कहीं आग लग गयी हो, मौसो ।

प्रभा—एक औरत के दिल में आग लगी है ।

राज—(पास आकर) किसके दिल में आग लगी है ?

प्रभा—इस लड़की को जानते हो, राज ?

राज—लड़की ? ओह मैंने तो देखा ही नहीं था । मैं नहीं जानता ।

प्रभा—क्या यह तुम्हारे साथ नहीं पढ़ती ?

राज—पढ़ती होगी । सैकड़ों लड़कियाँ हैं कालेज में । किसे-किसे पहचानता फिरूँ ।

उषा—प्रभा ! मैं जा रही हूँ ऊपर ! मेरा सिर चकरा रहा है । (कुर्सी खिसकने का शब्द) सरला बेटी । तुम न घबराओ । प्रभा सब ठीक कर देगी । (दूर जाता हुआ शब्द) हे प्रभा ! क्या होगा अब ? वे सुनेंगे तो...ओह ! ऐसी सन्तान का तो जन्म होते ही गला घांट दे । (स्वर विलीन हो जाता है ।)

प्रभा—बैठ जाओ, राज !

राज—मैं ऐसे ही ठीक हूँ ।

प्रभा—(कठोर स्वर में) मैं कहती हूँ बैठ जाओ । (कुर्सी जिसकने का शब्द) उस दीवार की तरफ क्या देख रहे हो ? इधर देखो, मेरी तरफ देखो । सरला जो कुछ कहती है वह कहाँ तक सच है ?

राज—सब भूठ हैं ! (परेशानी के स्वर में) मौसी ! मैं वैसे ही बहुत परेशान हूँ, और परेशान न करो । मैं कुछ नहीं जानता, मौसी, मैं कुछ नहीं जानता ।

प्रभा—मैं जानती हूँ तुम भूठ बोल रहे हो ! तुम्हारा उतरा हुआ चेहरा, भुकी हुई आँखें, काँपते हुये हाथ साफ बता रहे हैं कि तुम भूठ बोल रहे हो ।

राज—(चीखकर) मैं सच कह.....

सरला—(बीच में ही) आपकी चिट्ठियाँ मेरे पास इस समय भी भी हैं । कहिये तो दिखादूँ ?

[सरला का अन्तिम वाक्य समाप्त होने के साथ ही जोर से तमाचा मारने की आवाज । सरला की मिसत्रियाँ, प्रभा की धोमी चीख ।]

प्रभा—तुम्हें शर्म नहीं आती लड़की पर हाथ उठाते ?

राज—यह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी है, मौसी ! सैकड़ों बार कह चुका हूँ, दो चार-हजार रुपया लेकर मुँह काला कर, पर यह तो लाखों पर तुली है ।

प्रभा—यह क्या बक रहे हो तुम ?

राज—पिता जी की सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिये ही यह जाल रचा है इसने । न जाने किसका पाप मेरे सर मढ़ रही है ।

प्रभा—(चीखकर) राज ! मैं नहीं जानती थी तुम इतने पतित हो ! इस तरह अपना दोष दूसरे के सिर मढ़ने से छुटकारा नहीं

मिल सकती। मैं जानती हूँ एक नारी इस सम्बन्ध में कभी झूठ नहीं बोल सकती। (कोपल स्वर में) सरला बेटी। तुम जाओ अपने छात्रावास में। किसी बात की चिन्ता न करो। सब ठीक हो जायेगा। मेरा राज कायर नहीं है। मैं उसे समझाऊँगी।

[कुर्सी खिचने का शब्द। सन्ध्या की पदचाप दूर जाकर बिखीन हो जाती है।]

प्रभा—(मीठे स्वर में) बेटी राज ! यह गुड़ियों का खेल नहीं है। किसी के जीवन-मरण का प्रश्न है। इस पर सोचो और हिम्मत से काम लो। क्षणिक आवेश में जो कुछ हो गया है उसे स्वीकार करना ही मनुष्यता है। सरला को अपना कर अपनी.....

राज—(धीरे ही में) लेकिन यह कैसे.....

[पृष्ठ भूमि में करुण-संगीत की ध्वनि।]

प्रभा—यह सब पहले ही सोचना चाहिये था, बेटी ! मैं जानती हूँ, अगर तुमने उसे नहीं अपनाया तो तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, सरला का भी कुछ नहीं होगा, पर...पर (निश्वास छोड़कर) जरा सोचो, उसका क्या होगा जिसका जन्म होने वाला है। पिता होते हुये भी उसे पिता का प्यार नहीं मिल पायेगा, माँ होते हुये भी सँ की सजता से वंचित रहेगा। (आर्द्र स्वर में) क्या तुम यह सहन कर सकोगे कि...कि तुम्हारी अपनी सन्तान अनाथ कहलाये, किसी अनाथालय में बेवसी और.....

[वाद्य अपूर्ण रह जाता है। प्रभा भिसकने लगती है। करुण संगीत की ध्वनि तीव्रतर होने होते तीव्रतम स्थिति को पहुँच गयी है।]

राज—सिसकना बन्द करो, मौसी ! (चीखकर) मैं कहता हूँ सिसकना बन्द करो। (कुर्सी गिरने का शब्द) मैं पागल हो जाऊँगा, मैं

पागल हो जाऊँगा । (दूर जाता हुआ स्वर) मेरा सिर फटा जा रहा है । मैं सोच नहीं सकता, समझ नहीं सकता । रामू ! कहाँ है मेरी वोतल ? मैं पृथ्वी हूँ, कहाँ है मेरी वोतल ?

[दूर से राज की आवाज और पास से प्रभा को सिसकियों का स्वर आते-आते फेड़ आउट ।]

अन्तराल के बाद

[सोहनलाल की पदचाप पास आती है फिर दूर जाती है । पदचाप भारी है जिससे भास होता है कि वे चिन्तित है । दीवार घड़ी की 'टिक-टिक' साफ सुनाई दे रही है । घड़ी ९ बजाती है । सोहनलाल जैसे चौंक जाते हैं ।]

सोहन लाल—(पास से) यह घड़ी भी कितनी मनहूस है । जघ देखो तब "टन-टन-टन !" न कुछ समझने देती है, न सोचने देती है ।

ऊषा—घड़ी पर क्यों क्रोध उतारते हो ? इस तरह टहलने से कुछ नहीं होगा । घर आर वंश की इज्जत दाँव पर है । कुछ करो ।

सोहन लाल—क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता । क्या है — है इस राज को ?

ऊषा—हो गया है अपना निकलेंगे ? मैं तो त

सोहन लाल—(भुँकलाहट)
तुमने मना किया था पर...पर मैं मेरी ही है, मैं लेकिन मैं यह र

ऊषा—अब तक मैं सहती

इस घर में या तो

सोहन लाल—लगता है :

एक समस्या हल नहीं हो पायी और तुम अपनी गाथा लेकर बैठ गयीं ।

उषा—(बिसकते हुये) तुम्हें तो न जाने वह क्यों प्यारा है ? मैं तो जैसे कोई हूँ ही नहीं । अगर अपनी कोख की सन्तान होती तो यह सब क्यों देखना पड़ता ?

सोहन लाल—(खीझ भरे स्वर में) होती कैसे अपनी सन्तान ! जब भाग्य में यही लिखा था तो.....

उषा—तुम्हें तो वस भाग्य को ही कोसना आता है ।

सोहन लाल—अब वस भी करो । जाओ ऊपर । मुझे सोचने दो, भगवान के लिये, मुझे सोचने दो ।

उषा—(दूर जाता हुआ स्वर) अगर मेरे रहने से तुम सोच नहीं सकते तो मैं जाती हूँ ।

सोहन लाल—(स्वगत) कोख की सन्तान के लिये कह रही थी !
(दुखी स्वर में) अपनी सन्तान...! होती कैसे ? ओह ! आज से २२-२३ साल पहले की वह काली रात, जिसका भयानक जीवन पर छाया हुआ है, जिसकी मनहूस आवाज है । ओह ! वह अमागी है कड़ियाँ.....।

रम्भ । घड़ी की टिक-टिक ।

उषा का स्वर आता है । ।

अभी गया है न, उसी के घंटा भर और लगेगा

है ।

उषा—भेजूँ किससे ? नौकर आधी रात तक थोड़े ही जागते रहेंगे । मैं ही आती हूँ लेकर ।

सोहन लाल—तुम क्यों बार-बार उतरती-चढ़ती हो ? ऐसे में तुम्हें आराम करना चाहिये । मैं ही ऊपर आकर पी जाऊँगा ।

[अन्तिम वाक्य समाप्त भी नहीं हाने पाता कि पृष्ठभूमि से बिल्ली के रोने का स्वर आता है ।]

सोहन लाल—(चौंककर) ! यह क्या है ?

उषा—(समीप आता स्वर) कम्बख्त बिल्ली रो रही है कहीं ! मैं चाय ला रही हूँ ।

[सीढ़ियों से उतरने की आवाज आती है । घड़ी की टिक-टिक जारी है । तभी सहसा सीढ़ियों से लुढ़कने, उषा की चीख और प्याला तश्तरी के गिरकर चूर होने का सम्मिलित स्वर अता है ।]

सोहन लाल—(चीखकर) उषा ! उषा !!

[कुर्सी उलटने और सोहनलाल के भागने की आवाज आती है ।]

सोहन लाल—(दूर पर) अरे ! तुम गिर गयीं । मैंने मना किया था, चाय न लाओ । उषा ! उषा !! हे भगवान ! यह तो बेहोश है । सर से खून बह रहा है । दीनू ! रामू !! कहाँ मर गये हो जाकर ? जल्द आओ ! बहू जी गिर गयीं हैं । इन्हें अस्पताल ले चलना है ।

[क्षणिक विराम के बाद]

सोहन लाल—(व्यग्र स्वर में) सिस्टर ! मेरे हाल पर रहम खाओ । बताओ कैसी है मेरी उषा ? अभी होश आया या नहीं ?

नर्स—मिस्टर सोहन लाल ! इस फार्म को भर कर दस्तखत कर दीजिये ।

सोहन लाल—पहले मेरी बात का उत्तर दो सिस्टर ! कैसी है उषा ?

नर्स—जल्दी कीजिये मिस्टर ! डाक्टर मुझ पर बिगड़ेंगी ।

सोहन लाल—डाक्टर...डाक्टर...डाक्टर। तुम सब पत्थर हो, पत्थर !
 इन्सानियत तो जैसे है ही नहीं तुम लोगों में ! (आर्द्र
 स्वर में) तुम्हारी कोमल आकृति देखकर समझा था
 कि...कि तुम्हारा हृदय भी कोमल होगा। पर नहीं...
 (चिढ़े स्वर में) तुम भी वैसी ही हो। मशीन...माँस
 की बनी चलती-फिरती मशीन, जिसमें हृदय नहीं,
 भावना नहीं, दया नहीं। (सिमकने का स्वर)

नर्स—(कोमल स्वर में) हिम्मत से काम लीजिये, मिस्टर सोहन
 लाल ! यह वचन ठीक नहीं। कृपा करके इस फार्म को
 भर दीजिये।

सोहन लाल—(जोर में सिमकते हुए) मिस्टर !

नर्स—(आर्द्र स्वर में) मैं समझती हूँ। हम भी इन्सान ही हैं।
 लेकिन...लेकिन अगर हम भी आपकी तरह रोने लगें तो फिर
 क्या हो। प्लीज़ ! जल्दी कीजिये। देखिये, और लोग
 आपकी तरफ ही देख रहे हैं !

सोहन लाल—लाओ ! (सयत होकर) क्या भरना है मुझे ?
 (कागज़ के खोलने की आवाज़)

नर्स—अपना नाम, पता, पेशा वगैरह लिखकर यह लिख दीजिये
 कि आप क्लोरोफार्म दिलवा कर अपनी पत्नी का आपरेशन
 करवाने के लिये तैयार हैं।

सोहन लाल—(सहम कर) आपरेशन ?

नर्स—जी हाँ !

सोहन लाल—(घबराये स्वर में) लेकिन क्यों ?

नर्स—यह सब अभी डाक्टर आपको समझा देंगी ! हाँ, ठीक है !
 लिख दिया ! अब यहाँ पर दस्तखत कर दीजिये। (हककर)
 धन्यवाद ! (दूर जाता स्वर) भगवान पर भरोसा रखिये !
 सब ठीक हो जायेगा।

सोहन लाल—(रुद्ध कंठ से) भगवान पर भरोसा रखने के सिवाय
और चारा ही क्या है ? कम्बख्त रामू भी नहीं आया
अभी तक माँ जी को लेकर !

[दूर से ताँगा आन का आवाज आती है जो कुछ दूर पर आकर
रुक जाती है । रामू, माँ जी और प्रभा की सम्मिलित पदचापें
दूर से पाम आती है ।]

रामू—वह रहे बाबू जी !

सोहन लाल—(आद्र स्वर में) माँ जी !

माँ जी—बेटा, क्या हुआ मेरा उषा को ? कहाँ है मेरी बेटी ?

सोहन लाल—ऊपर से चाय ला रही थी मेरे लिये ! न जाने कैसे
गिर गयी !

माँ जी—हे राम ! ऐसे में ऊपर से गिरना ! भगवान क्या होगा
अब ? कहाँ है उषा ? मैं देख तो लूँ अभी बेटी को ।

सोहन लाल—उधर उस कमरे में है ! मैं तो अन्दर जा नहीं
सकता । आप ही जाकर देखिये । नसे कह रही थी,
आपरेशन होगा ।

माँ जी—आपरेशन होगा ? शायद बच्चा मर गया हो । मैं अभी
पूछती हूँ डाक्टर से ।

[पदचाप दूर जाता है ।]

रामू—मैं बाहर बैठता हूँ बरामदे में दीनू के पास ।

सोहन लाल—ठीक है ! सो न जाना भाई ।

रामू—(रुद्ध कंठ से) कैसी बातें करते हैं बाबू जी !

(उसकी सिसकियों तथा पदचाप का स्वर दूर जाता है ।)

सोहन लाल—मेरा दिल बैठा जा रहा है । न जाने क्या होने वाला
है, प्रभा ।

प्रभा—साहस रखिये जोजा जी ! खड़े क्यों हैं ? बैठ जाइये इस
बेंच पर !

सोहन लाल—तुम भी बैठो ! उषा की यह दशा मेरे ही कारण हुई ।

अगर मैं ऊपर जाकर चाय पी आता तो यह सब क्यों होता ।

प्रभा—आप बेकार के लिए दुखो होते हैं । जो भाग्य में लिखा होता है वह होकर ही रहता है ।

सोहन लाल—यह तो ठीक है पर...

प्रभा—बीती बातों को भूल जाइये, जीजा जी ! अब आगे की सोचिये ।

सोहनलाल—शायद ठीक कहती हो तुम ! (निश्वास लेकर) तुम लोगों के आने से कुछ हिम्मत आ गयी है, नहीं तो. . . .
(रूखी हँसी हँसकर) न जाने कैसा जी हो रहा था ।

प्रभा—(हँसकर) शहर में ससुराल होने से यह लाभ तो हुआ ही आप को । देखिये, माँ जी आ रही हैं । कुछ बिगड़ी हुई मालूम हो रही हैं । शायद जीजी तक पहुँच नहीं पायीं ।

माँ जी—(दूर से पास आता हुआ स्वर) अजीब लोग हैं ये ! दूसरे का दुख-दर्द पहचानते ही नहीं । (समीप आकर) बेटा, डाक्टरनी ने मुझे अन्दर नहीं घुसने दिया । वे खुद आ रहो हैं तुमसे बात करने ।

सोहन लाल—अब क्या बात करेंगी ? माँ जी, वही तो नहीं हैं जो सफेद कोट पहने इधर आ रही हैं ।

माँ जी—हाँ, यही तो हैं ।

[डाक्टरनी की पदचाप समीप आती है ।]

डाक्टरनी—मुझे आपसे कुछ बात करनी है, मिस्टर सोहन लाल ।

सोहन लाल—कहिये !

डाक्टरनी—विफोर दीज़ लेडीज़ ?

सोहन लाल—कोई हर्ज नहीं ! इनमें मुझसे ज्यादा समझ और हिम्मत है ।

डाक्टरनी—तुम्हारी पत्नी वैसे ही दुबल थीं। अब तो और भी अधिक पीलो पड़ गया हूँ। आपरेशन से पहले.....

सोहन लाल—(जीब म ही) खून देना है ? आप मेरा खून दे सकती हैं।

प्रभा—वाह ! आपका खून जीजी के खून से कैसे मिल सकता है ? आप मेरा खून दीजिये !

डाक्टरनी—खून निकालने और फिर उसका टेम्प्रेचर डाउन करने में काफी समय लगेगा। यहाँ एक-एक मिनट कीमती है। इसलिये मैं प्लाजमा देना चाहती हूँ ! लेकिन वह बहुत कीमती है, इसलिये आपसे पूछना ठीक समझा।

सोहन लाल—आप पैसे की चिन्ता न करें ! हजार-दो हजार जो कुछ भी कीमत होगी, मैं दे दूँगा। आप जल्दी कीजिये। अगर उसे कुछ हो गया.... उसे बचाइये किसी भी तरह.... किसी भी कीमत पर.....।

डाक्टरनी—एक बात और कहना चाहती हूँ। मेरा विचार है कि बच्चेदानी को गहरी चोट पहुँची है। खून निकल कर पेट में जम रहा है। आपरेशन करना ही है। मैं आपको राय देती हूँ कि आप स्टर्लायज भी करा दें।

सोहन लाल—जी....!

डाक्टरनी—यह बहुत जरूरी है आपकी पत्नी के लिये ! इस आपरेशन के बाद यदि फिर बच्चा रहा तो उनके जीवन के लिए खतरा हो सकता है।

माँजी—लेकिन यह कैसे हो सकता है ! एक भी सन्तान तो है नहीं....।

डाक्टरनी—आपकी मर्जी ! मैंने बता देना अपना फर्ज समझा।

सोहन लाल—मैं राजी हूँ। मुझे नहीं चाहियें बच्चे। मैं उषा के जीवन से खिलवाड़ नहीं कर सकता।

डाक्टरनी—गुड ! अब मैं जाती हूँ । भगवान सब ठीक करेगा ।
 सोहन लाल—क्या मैं एक बार उसे देख सकता हूँ ? क्या वह होश
 में आ गयी है ?

डाक्टरनी—हाँ ! कुछ-कुछ होश आ गया है । आइये, आप लोग
 देख लीजिये । मगर एक शर्त है । आप लोग न तो बात
 करेंगे, और न एक मिनट से ज्यादा ठहरेंगे । आइये मेरे
 साथ ।

[धीमे संगीत के साथ पूर्व-स्मृति दृश्य समाप्त । घड़ी की परिचित
 टिक-टिक के साथ फेड इन ।]

सोहन लाल—(स्वागत) ओह ! आपरेशन हो गया । तुम बच गयीं
 उपा, पर मैं.....मेरी जीवित मृत्यु हो गयी । मैं वह सब कर
 बैठा जो मुझे नहीं करना चाहिये था । तुम अस्पताल में
 थी और प्रभा ..ओह प्रभा मेरे निकट आती गयी.....निकट
 आती गयी । तुम्हारे जाने से अँधेरा हो गया था, प्रभा
 के आने से फिसलन हो गयो और फिर.....फिर ये पाँव...
 ओह ।

[धीमे संगीत के साथ पूर्व-स्मृति दृश्य प्रारम्भ । कार की आवाज़ ।
 पृष्ठ भूमि में सड़क का मन्द कोलाहल ।]

प्रभा—तो आज जीजी से शिकायत की थी मेरी ?

सोहन लाल—मैंने तो तारीफ की थी ।

प्रभा—तारीफ की थी ! क्यों ?

सोहन लाल—(हँस कर) क्योंकि तुम तारीफ के योग्य हो ।

प्रभा—चापलूसी करना कोई आपसे सीखे ।

सोहनलाल—क्या दर्पण भी चापलूसी करता है ?

प्रभा—अरे ! ठीक से चलाइये गाड़ी ! कहीं एक्सीडेंट हो गया
 तो ?

सोहन लाल—तो क्या ? डर किस बात का है ?

[हार्न का स्वर ! सहसा ब्रेक लगने की आवाज़ । प्रभा की धीमी चीख ।]

सोहन लाल—अन्धे होकर चलते हैं सड़क पर ।

प्रभा—आप ही देखकर चलाइये ।

सोहन लाल—देख तो रहा हूँ ।

प्रभा—अजी मुझे नहीं, सड़क को देखिये !

सोहन लाल—इस काली-कुरूप सड़क में क्या है देखने के लिये ?

प्रभा—(हँस कर) और मुझ में क्या है ?

सोहन लाल—जो तुम्हारी जीजी में है ।

[कुत्ते की चीं-ची]

सोहन लाल—शायद टाँग टूट गयी ।

प्रभा—अभी तो कुत्ते की ही टाँग तोड़ी है कहीं आदमी का सिर न तोड़ दीजियेगा । भगवान के लिए अभी तो सामने देखकर गाड़ी चलाइये । मुझे घर चलकर देख लीजियेगा । रात भर आपके सामने देवी की प्रतिमा की तरह बैठी रहूँगी ।

सोहन लाल—तब तो आरती, पूजन और प्रसाद के लिये सामान इधर से ही लेता चलूँ ।

[दोनों की हँसी । कार रुकने की ध्वनि]

प्रभा—गाड़ी रोक क्यों दी ?

सोहन लाल—कुछ मिठाई लेता चलूँ । देवी की कृपा से भक्त का भी मुँह मीठा हो जायगा ।

वृद्ध भिखारिन—(पास आकर) कुछ हमें भी मिल जाये, मालिक । बूढ़ी हूँ, हाथ पैर से मोहताज हूँ ।

सोहन लाल—आगे जाओ, माई !

भिखारिन—एक पैसा मिल जाये, सरकार ! जोड़ी सलामत रहे मालिक की ! बहू जी की गोद भरे !

प्रभा—चलिये ! मेरा दम घुट रहा है । जल्दी कीजिये, आगे

बढ़ाइये गाड़ी । ओह ! यह भिखारिने भी कैसी अजीब बातें करती हैं ।

[गाड़ी स्टार्ट होने तथा सोहनलाल के हँसने की आवाज़ के साथ-साथ फेड आउट । क्षणिक विराम के बाद बादलों की गरज, बिजली की कड़क, वर्षा और हवा की आवाज़ के साथ फेड इन । खिड़कियों के बन्द होने-खुलने का शब्द ।]

प्रभा—(दूर से पास आता हुआ स्वर) कितना भयानक है यह तूफान ! ओह ! जैसे आज के बाद फिर पानी कभी बरसेगा ही नहीं । (पास आकर) आपको तो अपनी कुछ चिन्ता है ही नहीं, जीजा जी ! कितनी तेज और ठण्डी हवा आ रही है और आप खिड़कियाँ खोलकर लेटे हैं । (खिड़कियाँ बन्द करने की आवाज़) अगर तबियत खराब हो गयी तो मैं जीजी को क्या जवाब दूँगी ?

सोहन लाल—(हँस कर) तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम मुझसे अधिक जीजी का ध्यान रखती हो ! जो कुछ करती हो वह मेरे लिये नहीं, जीजी के लिये करती हो ।

प्रभा—(दूर जाता स्वर) ऐसा ही समझ लीजिये ।

सोहन लाल—अरे ! जा कहाँ रही हो ? सुनो तो ।

प्रभा—(पास आकर) क्या है ?

सोहन लाल—बैठ जाओ ।

[कुर्सी पर बैठने की आहट]

प्रभा—लीजिये बैठ गई ।

सोहन लाल—जानती हो यह तूफान क्यों आता है ?

प्रभा—मेरे कालेज में यह सब नहीं पढ़ाया जाता ।

सोहन लाल—कोई हजे नहीं । मैं पढ़ा दूँगा ।

प्रभा—(हँसकर) मुझे नहीं पढ़ना है आपसे । (कुर्सी के चरमराने की आवाज़) बहुत खटमल पाल रखे हैं आपने ।

सोहन लाल—क्या काट रहे हैं ?

प्रभा—(चिढ़कर) नहीं, प्यार कर रहे हैं ।

सोहन लाल—घटुत भाग्यशाली हैं । (कुर्मी हटाने का स्वर) अरे !
यह क्या कर रही हो ? फर्श पर क्यों बैठ रही हो ? पलंग पर
बैठ जाओ न !

प्रभा—मैं फर्श पर ही ठीक हूँ । (चूड़ियों की खनक) अरे ! यह
क्या कर रहे हैं आप, छोड़िये हाथ । हे राम आप तो कलाई
ही तोड़ देंगे । अच्छा, लीजिये ! पलंग पर ही बैठती हूँ !
अब तो ठीक है ?

सोहन लाल—हाँ, प्रभा ! जब धरती का हृदय भूख की ज्वाला से
धधकने लगता है, तब उसे शान्त करने के लिये दूर देश से
वादल आते हैं । यह तूफान जिसे हम बुरा समझते हैं,
बुरा नहीं है । प्यासी धरती की प्यास बुझाता है यह ।

प्रभा—(हँसकर) आप तो कविता करने लगे । मैं तो समझती थी
आपको जिरह करने के सिवाय और कुछ आता ही नहीं ।

सोहन लाल—इस तूफान में भी जो कवि न बने वह पत्थर है ।
क्या तुम भी अपने में कुछ नयापन अनुभव नहीं कर रही हो ?

प्रभा—नयापन ? नहीं तो !

सोहन लाल—तुम अपने को धोखा दे रही हो । तुम्हारी आँखों की
चमक, अधरों की मुस्कान, अंग-अंग की चंचलता साफ
बता रही है कि इस तूफान ने तुम्हारे हृदय में भी एक
तूफान मचा दिया है । मेरे हृदय में भी एक तूफान है प्रभ
जो इस बाहरी तूफान से कहीं अधिक भयानक है ! वह मेरे
तन-मन को झुझकोर रहा है ।

प्रभा—अरे ! आप तो काँप रहे हैं ! (काँपती आवाज़ में) लाइये, कम्बल उड़ा दूँ आपको !

सोहन लाल—यह कम्पन शरीर का नहीं, हृदय का है, प्रभा ! तुम भी तो काँप रही हो । तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं, तुम्हारी आवाज़ काँप रही है ।

प्रभा—(सँभल कर) मैं ? नहीं तो ! कहाँ काँप रही हूँ मैं ?

सोहन लाल—प्रभा ! आज मैं तुम्हें नये रूप में देख रहा हूँ । कितनी सुन्दर लग रही हो तुम, एक दम उषा की तरह ! मेरे और निकट आओ ! (कम्पित स्वर में) ओह ! यह तूफान कब शान्त होगा ?

प्रभा—(कम्पित स्वर में) यह तूफान...यह पागलपन ! ओह ! क्या है यह सब ?

सोहनलाल—यह भारी रहस्य है । (चूड़ियों की खनक) प्रभा ! और पास आओ ! ओह ! यह भयानक रात...और यह तूफान...

[बोलते-बोलते फेड आउट । क्षणिक विराम के बाद फेड इन ।

सोहन लाल का दूर से पास आता हुआ प्रसन्न स्वर ।]

सोहन लाल—उषा ! उषा ! आज मैं उस सेठ वाला केस जीत गया । (पास आकर) अरे ! उठती क्यों हो ? लेटी रहो । अभी तुम्हें पूरा आराम करना चाहिये । दवा पी ली थी ?

उषा—मैं तो थक गयी हूँ दवा पीते-पीते ।

सोहन लाल—अभी से थक गयीं ? अभी दो महीने भी तो नहीं हुये हैं घर आये । यह दवा तो खून बनाने की है । तीन-चार महीने और पीनी पड़ेगी ।

उषा—कड़वी बहुत है ।

सोहन लाल—(हँसकर) अगर दवा मीठी हो तब तो लोग जान-बूझ कर बीमार पड़ने लगे ।

उषा—(हँसकर) बात तो ठीक है । (ऊँचे स्वर में) प्रभा ! चाय ले
आओ नीचे ।

प्रभा—(दूर से) मेरे पैर में दर्द है, जीजी ! यहीं भेज दो जीजा
जी को ।

सोहन लाल—मैं ऊपर ही चला जाता हूँ ।

[सीढ़ियों पर चढ़ने की आवाज़ । दूर पर प्याले और तश्तरियों
की आवाज़ ।]

सोहन लाल—लो मैं आ गया प्रभा ! (रुक कर) कई दिनों से तुमसे
बात करना चाहता था, पर तुम तो दूर-दूर ही रहती हो !
आज

प्रभा—(धीच में ही) आज जान कर आपको बुलाया है ! (उदास
और गम्भीर स्वर में) आप कहते थे कुछ नहीं होगा, लेकिन
..... (धीमी सिसकियाँ)

सोहन लाल—(अत्यन्त धीमे स्वर में) क्या बात है ? रोती क्यों हो ?
नीचे उषा है । सुनेगी तो क्या समझेगी ?

प्रभा—(सिसकते हृथे) अब क्या होगा ? मैं तो चिन्ता के मारे मरी
जा रही हूँ । पिछले महीने ही कहने वाली थी पर सोचा
शायद भ्रम हो । अब . . . अब तो . . . निश्चय हो गया
है । मैं क्या करूँ . . . ?

सोहन लाल—बबराती क्यों हो ? यह लो दवा ! सब ठीक हो
जायेगा ।

प्रभा—(दृढ़स्वर में) मैं दवा नहीं खाऊंगी ।

सोहन लाल—तो फिर क्या करोगी ? हम दोनों की बदनामी होगी ।
मेरा क्या है ? मैं तो पुरुष हूँ । तुम्हारा जीवन नष्ट हो
जायेगा ।

प्रभा—लेकिन अपने ही हाथों अपने होने वाले

सोहन लाल—(बीच में ही) यह भावुकता है ! यह लो पुड़िया ।
सँभाल कर रख लेना । सब ठीक हो जायेगा । किसी को
कानों-कान खबर भी नहीं होगी ।

प्रभा—(मन्द स्वर में) लाइये ! अब मैं यहाँ एक पल भी नहीं ठहर
सकती । अभी माँ के पास चली जाऊँगी । यहाँ मेरा दम
घुट जायेगा ।

सोहन लाल—तुम्हारी इच्छा । लेकिन उपा से क्या कहोगी ?

प्रभा—कुछ न कुछ कह ही दूँगी ।

[धीमे संगीत के बाद घड़ी की वही नियमित टिक-टिक ।]

सोहन लाल—(स्वगत) प्रभा तो चली गयी पर एक उदासी, एक
टीस, एक दर्दिली याद छोड़ गयी । अकेलापन मनहूस
अकेलापन और फिर एक दिन की घटना । ओह ! उसी ने
राज के इस नाटक का सूत्रपात किया । कैसे भूल सकता हूँ
उसे ? वह शाम.....

[धीमे संगीत के साथ पूर्व-स्मृति दृश्य उभरता है । पृष्ठ-
भूमि में बरतनो की खड़खड़ । समीप ही घड़ी की टिक-टिक ।
एक क्षण बाद ही पाँच बजते हैं ।]

सोहन लाल—(दूर से) रामू ! फलों की टोकरी रखी है यहाँ ।
ऊपर ले जाना । (पास आकर) उषा ! आज एक बहुत ही
मजेदार केस आया अदालत में ।

उषा—वह सब पीछे बताना । पहले चाय पीलो ।

सोहन लाल—चाय तो आज क्लब में ही पी ली थी । हाँ, सिगरेट
जरूर पिऊँगा ।

उषा—तुम सिगरेट बहुत पीने लगे हो । बेकार में पैसा फूँकने से
क्या लाभ ?

सोहन लाल—(हँस कर) जोड़ूँ भी किस के लिये । (गम्भीरता से)

और फिर सिगरेट से दिल और दिमाग को आराम भी तो मिलता है ।

उषा—मिलता होगा । मेरा तो दम घुटने लगता है इसके धुँए से ।
सोहन लाल—ओह ! मैं तो भूल ही गया था । यह लो, फेंके देता हूँ ।

उषा—आजकल उदास क्यों रहते हो ?

सोहन लाल—उदास ? नहीं तो ।

उषा—जरूर कोई बात है । हर समय चिन्तित रहते हो । परेशानी की रेखायें माथे पर साफ दिखाई देती हैं । बताओ क्या बात है ?

सोहन लाल—कुछ भी तो नहीं । काम कुछ ज्यादा है आजकल ।

उषा—काम का तो बहाना है । ऐसा भी काम क्या कि अपनी से बात करने, उनके सुख-दुख में शामिल होने की मी फुरसत न मिले ।

सोहन लाल—(आर्द्र स्वर में) तुम्हारे प्रति कोई उपेक्षा जाने में तो नहीं हुई है, यदि अनजान में हो गयी हो तो माफी चाहता हूँ ।

उषा—अरे ! यह क्या कह रहे हो ? मैं अपने लिये नहीं कह रही थी ।

सोहन लाल—और कौन है मेरा अपना ?

उषा—माँ जो हैं, प्रभा है । प्रभा को यहाँ से गये डेढ़ वर्ष हो गया । एक बार भी तुम वहाँ नहीं गये । और तो और उसके व्याह में भी शामिल नहीं हुये ।

सोहन लाल—उन दिनों मेरा बाहर जाना जरूरी था उषा । (हसकर) छोड़ो भी इन बातों को । तुम अपनी बताओ । तुम क्यों उदास रहती हो ?

उषा—अकेले मन नहीं लगता । तुम तो कचहरी चले जाते हो । मुझे घर का सूनापन काटने को दौड़ता है । :

सोहन लाल—हम दोनों एक ही रोग के रोगी हैं। तुम घर में अकेला-पन अनुभव करती हो, और मैं.....मैं कचहरी की चहल-पहल मैं भी अपने को अकेला ही पाता हूँ।

उषा—(निःश्वास) भाग्य की बात है। अच्छा अब बताओ किस केस के बारे में कह रहे थे।

सोहन लाल—कोई खास केस नहीं था। एक औरत ने अपने पति पर केस चलाया है।

उषा—(आश्चर्य से) अपने पति पर केस चलाया है ? क्यों ?

सोहन लाल—पति ने दूसरी शादी कर ली है।

उषा—मगर दूसरी शादी का कोई कारण तो होगा।

सोहन लाल—पहली पत्नी से कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिये दूसरी शादी की है।

उषा—(सन्तोष से) तब तो कोई बुरा काम नहीं किया।

सोहन लाल—मैं तो उसे सहायाप मानता हूँ।

उषा—यह तुम्हारी भूल है। सन्तान ही शादी का ध्येय है। यदि वंश ही आगे न चला तो...

सोहन लाल—(बीच में ही) क्या सन्तान उत्पन्न करने के सिवाय पत्नी का और कोई स्थान...

उषा—(बीच में) तुम अधिकार और कर्तव्यों को मिला क्यों देते हो ? अनेक अधिकारों के साथ पत्नी का यह कर्तव्य भी है कि वह सन्तान उत्पन्न करके पति का वंश चलाये।

सोहन लाल—(हंस कर) तब तो तुम...

उषा—(बीच में ही) हाँ, मैं उस कर्तव्य को पूरा करने में असमर्थ हूँ अब। इसीलिये मैं कई दिनों से सोच रही थी कि तुमसे दूसरी शादी करने के लिए कहूँ। आज प्रसंग है आ गया। (धीमे स्वर में) मेरो प्रार्थना मानोगे ?

सोहन लाल—(आवेश में) ऐसा पाप करने से पहले मैं मर जाना पसन्द करूँगा ।

उषा—यह क्या कह रहे हो ? सोचो, बिना सन्तान के परिवार किस काम का ? सन्तान ही घर की शोभा है । वही पति-पत्नी के प्यार को अमर रखने वाली सुनहरी कड़ी है । घर-बाहर का यह सूनापन.....ओह ! कब तक चलेगा ऐसे ? हमारे रोग का इलाज यही है । तुम्हें दूसरी शादी करनी ही पड़ेगी ।

सोहन लाल—(अपेक्षाकृत तेज स्वर में) मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता । (धीमे और आर्द्र स्वर में) उषा, मेरी उषा ! मैं तुम्हें सन्तान के लिये नहीं, तुम्हारे लिये प्यार करना हूँ । मुझे नहीं चाहिये सन्तान.....

उषा—पर मुझे तो चाहिये ! सन्तान के लिये नहीं, तो मेरे लिये ही मेरी बात मान लो ।

सोहन लाल—(रुद्ध कंठ से) ऐसा न कहो, उषा ! मैं...मैं ऐसा नहीं कर सकता...नहीं कर सकता ! जो.....जो कुछ कर चुका हूँ...अभी उसी का प्रायश्चित्त करना है ।

उषा—क्या मतलब है तुम्हारा ?

सोहन लाल—तुम नहीं समझोगी उषा ! तुम कुछ नहीं समझोगी । मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । यह प्यार, मैं किसी दूसरी नारी को नहीं दे सकता...कभी नहीं दे सकता । (दूर जाता हुआ स्वर) अब कभी ऐसी बात न कहना...उषा...अब कभी ऐसी बात न कहना...।

[अन्तिम वाक्य के साथ फेड़ आउट । क्षणिक विराम के बाद सोहनलाल का दूर से समीप आता हुआ प्रसन्न स्वर ।]

सोहन लाल—उषा ! उषा !! देखो क्या लाया हूँ तुम्हारे लिये ! (समीप आकर) देखो !

उषा—(प्रसन्न होकर) अरे, यह तो बच्चा है ! देखूँ ! ओह !
कितना सुन्दर है । गुलाब सा चेहरा, कमल सी आँखें !

सोहन लाल—अभी साल भर का ही है । पर देखो, कितना नटखट है । लो, सँभालो इसे । मेरी तो नाक नोंच रहा है पाजी !

उषा—लाओ ! चाँद का टुकड़ा है ! किसका है ?

सोहन लाल—कुछ देर पहले अनाथ था, अब अपना है ।

उषा—(चौक कर) क्या अनाथालय से लाये हो ?

सोहन लाल—हाँ, यही हमारे रोग का इलाज है, उषा ! मैं इसे पिता का प्यार दूँगा, तुम माँ की ममता देना । अब घर का आँगन इसकी किलकारियों से गूँजता रहेगा ।

उषा—लौटा आओ बच्चे को । मुझे नहीं चाहिये ऐसा बच्चा । अनाथालय के बच्चों का क्या ठिकाना ? न जाने किसका हो, कैसा हो !

सोहन लाल—यह तुम्हारा भ्रम है, उषा ! देखो, तुम्हें देखकर हँस रहा है । मैंनेजर ने विश्वास दिलाया है कि बच्चा अच्छे घर का है ।

उषा—न जाने क्यों मेरा मन नहीं भरता । इससे अच्छा तो यह है कि किसी नाते-रिश्तेदार के बच्चे को गोद लेलो ।

सोहन लाल—नाते-रिश्तेदार के बच्चे को हम अपना सच्चा प्यार नहीं दे सकते, क्योंकि हमारे अन्दर हमेशा यह भावना रहेगी कि यह बच्चा हमारा नहीं, उनका है । इस बच्चे के माता-पिता कौन हैं, हम नहीं जानते । इसलिये हम इसे अपनत्व दे सकते हैं ।

उषा—जैसी तुम्हारी इच्छा । पर न जाने क्यों मुझे लगता है कि इस बच्चे को मैं माँ की ममता नहीं दे सकती । ओह ! बहुत शरारती है । मेरी तो आँख ही कोंच दी ।

सोहन लाल—भूल जाओ कि यह बच्चा अनाथालय का है । कितना

भोलापन है इसके चेहरे में । हँसता है तो लगता है जैसे तुम्हारा ही बचपन हँस रहा हो ।

उषा—तुम्हें तो सारी दुनिया में मेरी ही हँसी दिखाई पड़ती है ।
सोहन लाल—(हँस कर) यही तो प्रेम की पराकाष्ठा है । राजकुमार जैसे सुन्दर इस बच्चे का क्या नाम रक्खा जाये ?

उषा—राजकुमार से अच्छा और क्या नाम होगा ! राज ही ठीक रहेगा !

[दूर से बकरी के बोलने की आवाज आती है]

उषा—(चौक कर) यह किस की बकरी घुस आयी है घर में ?
(ऊँचे स्वर में) दीन् ! ज़रा देख तो ।

सोहन लाल—बकरी मैं लाया हूँ ।

उषा—(आश्चर्य से) तुम लाये हो ? क्यों ?

सोहन लाल—किसी किताब में पढ़ा था कि बच्चों के लिये बकरी का दूध अच्छा रहता है । इसलिए बकरी भी लेता आया ।
एक धाय का भी प्रबन्ध कर लिया है । कल आजायेगी ।

उषा—(हँसकर) एक छोटे से बच्चे के लिये माता-पिता को कितनी भँभकें करनी पड़ती हैं ! काश ! बड़े होकर बच्चे यह याद रख सकते ।

[धीमे सगीत के साथ स्मृति-दृश्य समाप्त । पुनः फेड इन । घड़ी की टिक-टिक । पृष्ठभूमि में करुण सगीत ।]

सोहन लाल—(स्वगत) काश ! बड़ा होकर राज यह सब याद रख सकता ! काश ..? लेकिन वह भूल गया...सब कुछ भूल गया । (निःश्वास) कौन जानता था, वह भोला बच्चा ऐसा निकलेगा ? लाया था राज को घर की शोभा के लिये, उषा को प्रसन्न रखने के लिये पर.....हुआ कुछ और ही । उन्न के साथ उसकी शैतानियाँ बढ़ती गयीं, शैतानियों के साथ पास-पड़ोस वालों की शिकायतें बढ़ीं, शिकायतों के साथ

उषा का विरोध बढ़ता गया। पर मैं...मैं सब कुछ देख कर भी अन्धा रहा, सब कुछ सुन कर भी बहरा रहा। दोष मेरा है। उषा, तुम्हारा कोई दोष नहीं, कोई दोष नहीं। मेरी भूल का दण्ड तुम्हें क्यों मिले ? नहीं, मैं अकेले ही सहूँगा...अकेले ही जलूँगा इस आग में। काश ! मैंने तुम्हारी बात मान ली होती। काश ! मैंने राज को घर से निकाल दिया होता। काश ! प्रभा की बच्ची को गोद ले लिया होता ! प्रभा...प्रभा...! सब कुछ सहकर भी तुम मौन हो। तुम्हारा सुहाग मिट गया और मैं टुकर-टुकर देखता रहा, समवेदना के दो बोल भी नहीं कह पाया। ससुराल की यन्त्रणाओं से तंग आकर तुम यहाँ आ गयीं, तब भी मैं तुम से न मिल सका, माँ जी इस संसार से उठ गयीं और मैं तुम्हें धीरज न बँधा सका, और अंत में तुम्हारी एक मात्र आधार वह बच्ची भी चल बसी और मैं तुम्हारे आँसू भी न पोंछ सका। (मगीत तीव्रतर होता है) ओह ! कितना अभंगा हूँ मैं। (कंठरुद्ध, स्वर आर्द्र, धीमी सिसकियाँ) इतनी पास होकर भी तुम मुझ से दूर...बहुत दूर रहीं। शायद तुमने जमा नहीं किया मुझे। करना भी नहीं चाहिये। मुझे तो हमेशा अपनी ही आग में जलना चाहिये...जलना चाहिये।

[घड़ी ११ बजाती है ! उषा की पदचाप समीप आती है।]

उषा—(कोमल स्वर में) अब कब तक सोचते रहोगे ? चलो, सोने चलो। कल सबेरे देखा जायेगा।

सोहन लाल—उषा ! ओह ! मैं तो कुछ सोच ही नहीं पाया। मेरी सभझ में नहीं आता, क्या करूँ। अभी तक तो मैं बीती बातें ही सोचता रहा।

उषा—चलो, अब कल सोचना। प्रभा राज को फिर समझायेगी।

सोहन लाल—चलता हूँ। उषा, मेरी समझ में यह आज तक नहीं आया कि राज में यह सब आदतें आयीं कहाँ से। यह शिक्षा-दीक्षा सब बेकार गयी क्या ?

उषा—मैं तो फिर यही कहूँगी कि जन्मजात संस्कार कभी मिट नहीं सकते। मैनेजर राज को अच्छे घर का बताता है, पर मैं कहती हूँ वह झूठा है। कल आप उसे यहाँ बुलायें, मैं सही बात का पता लगा लूँगी।

सोहन लाल—जरूर बुलाऊँगा, उषा, जरूर बुलाऊँगा। यह पहेली मुझे परेशान किये है।

[अन्तराल के बाद]

उषा—अब आप अच्छी तरह समझ गये होंगे मैनेजर साहब, कि हमने आपको क्यों कष्ट दिया है।

मैनेजर—मैं सब समझ गया हूँ मगर..मगर मैं फिर कहता हूँ कि वच्चे के संस्कारों में कोई दोष नहीं। राज अच्छे घर का है।

सोहन लाल—हमारी दशा पर तरस खाइये, मैनेजर साहब ! हमें अब और अंधेरे में न रखिये।

मैनेजर—आह ! लगता है दिया हुआ वचन तोड़ना ही पड़ेगा।
पूछिये वकील साहब ! क्या जानना चाहते हैं आप ?

उषा—वच्चे के माता-पिता कौन थे ?

मैनेजर—पिता के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। माँ को अवश्य देखा है।

सोहन लाल—कौन है वह ?

मैनेजर—यह मैं नहीं जानता।

उषा—आप तो पहेली बुझा रहे हैं। हमें साफ-साफ बताइये सब बातें।

मैनेजर—सुनिये । एक तूफानी रात में मेरे आश्रम में एक युवती आयी । उसकी गोद में यही बच्चा था । उसने कहा कि बच्चे की माँ की मृत्यु हो गई है और पिता ने सन्यास ले लिया है । इसलिये अनाथालय के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है । अपने को उसने बच्चे की मौसी बताया । मुझे उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ । इसलिये मैंने बच्चे को लेने से इन्कार कर दिया ।

उषा—फिर क्या हुआ ?

मैनेजर—फूट-फूट कर रोने लगी वह । पैसे का लोभ भी दिया, पर पर मैं अपनी बात पर दृढ़ रहा । तब जाकर कहीं उसने सही बात बताई । बच्चा उसी का था । इस संसार में कदम-कदम पर अँधेरा भी है और फिसलन भी । पाँव फिसल गया था बेचारी का । युवती कुमारी थी और पुरुष था विवाहित ।

उषा—लेकिन उस पुरुष ने उसे अपनाया नहीं ? कुछ किया नहीं ?

मैनेजर—(रुखी हँसी हँस कर दुखी स्वर में) उसने उसे दवा दी थी, पाप का चिन्ह मिटाने के लिये । पर बेचारी मातृत्व का गलान घोंट सकी । जब तक छिपा छिपाये रही पर एक दिन अपनी माँ से कहना ही पड़ा । वह भी आखिर नारी ही थी, झपट कर कलेजे से लगा लिया अपनी बेटी को । पुरुष के पाप पर दो आँसू वहाने के अलावा और चारा ही क्या था । उसकी करुण कहानी ने मुझे द्रवित कर दिया और मैंने बच्चे को ले लिया ।

सोहनलाल—(उत्तंगित होकर) कौन थी वह युवती, मुझे शीघ्र बताओ ।

मैनेजर—यह जानने की मैंने कोशिश ही नहीं की । मेरे लिए उसका इतना परिचय ही काफी था कि वह एक सतायी हुई

नारी है। पुरुष के पाप के बोझ से मैंने उसे मुक्त कर दिया ताकि वह फिर से नया जीवन शुरू कर सके और बच्चे का जीवन भी बन जाये। हमारा धर्म ही दुखियों की सेवा करना है।

उषा—आप इसे सेवा कहते हैं ?

मैनेजर—(व्यग्न से) और आप क्या समझती हैं ? अगर हम यह सेवा न करें तो आपके समाज का नंगा रूप सामने आजाये। प्रतिष्ठित समझे जाने वाले स्त्री-पुरुषों की कलाई खुल जाये।

उषा—(तीखे स्वर में) देखा तुमने ? मैं कहती थी न कि बच्चे में माता-पिता के संस्कार अवश्य आते हैं। अब राज इस घर में एक दिन भी नहीं ठहर सकता।

राज—(प्रवेश करके) आप एक दिन की बात कहती हैं, मैं एक घड़ी भी नहीं ठहरूँगा।

सोहनलाल—(दुखी स्वर में) ओह ! राज, यह दशा बना रखी है तुमने ? क्या फिर पी है आज ?

राज—अन्धेरे में मेरा दम घुट रहा था ! मैं रोशनी के लिये पीता था, रोशनी के लिये। आज मुझे रोशनी मिल गयी है। आप लोगों की बातें मैंने सुन ली हैं। अब पीने की कोई जरूरत नहीं। (तेज आवाज में) मैनेजर साहब ! बताओ मेरे माँ-बाप कौन हैं ? बताओ, नहीं तो मैं आपका गला घोट दूँगा। बोलते हो या नहीं, मैं पूछता हूँ, बताते हो या नहीं ? (कुसी उलटने का शब्द। मैनेजर के कन्ठ से घों-घो की आवाज।)

सोहनलाल—यह क्या कर रहे हो, बेटा ! छोड़ दो मैनेजर साहब को। मैं कहता हूँ, छोड़ दो। हाँ, अब ठीक है ! आप जाइये मैनेजर साहब।

(मैनेजर की पदचाप दूर जाती है ।)

राज—आप लोग समझते होंगे कि मुझ में माता-पिता के संस्कार आये हैं, लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है । मुझ में अच्छा खून है, मुझ में अच्छा खून है । मैं आज जो कुछ हूँ उसके दोषी आप लोग हैं । (पृष्ठभूमि में करुण संगीत ध्वनि) इस घर में रहकर भी मैं इसे अपना न समझ सका । इस घर में रहकर मुझे न ममता मिली, न प्यार मिला । हमेशा घर को बाहर, और बाहर को घर समझा । घर के अँधेरे से घबरा कर बाहर की रोशनी की तरफ भागा; मगर बाहर फिसलन थी, पाँव फिसल गये ! (चीख कर) मैं पूछता हूँ अगर घर में रोशनी मिलती तो यह सब क्यों होता, (सिसकियाँ) यह सब क्यों होता ?

सोहन लाल -बेटा राज.....!

राज—(धीमा स्वर और बीच-बीच में सिसकियाँ) अब मुझे प्रकाश मिल गया है । अब मेरे पैरों में मजबूती आ गयी है । माँ जी, कल मैं सरला के बारे में झूठ बोला था । मैं उसे जानता हूँ । उसने जा कुछ कहा था सच है । मैं अभी उसके पास जा रहा हूँ, उससे माफ़ी माँगूँगा और भरे समाज में उसे अपनाऊँगा । मैं नहीं चाहता कि उसकी भी वही दशा हो जो मेरी माँ की हुई और.....(जोर से सिसकियाँ) और उस होने वाले बच्चे का भविष्य भी वैसा हो जैसा मेरा हुआ और फिर वह बच्चा भी बड़ा होकर अँधेरे से घबरा कर रोशनी की तरफ भागे और उसके पाँव फिसलें, और अँधेरे, फिसलन और पाँव का यह क्रम हमेशा चलता रहे । नहीं...नहीं...मैं ऐसा नहीं होने दूँगा...नहीं होने दूँगा... (दूर जाता हुआ स्वर) मैं जा रहा हूँ सरला...के पास ।

[संगीत की ध्वनि यहाँ पर आकर तीव्रतम हो जाती है और फिर मन्दतर होने लगती है ।]

उपा—(सन्तोप की साँस लेकर) चला गया । चलो अच्छा ही हुआ । पाप दूर हुआ । अरे ! ऐसे रुम रुम क्यों बैठे हो ? आज तो हँसने का दिन है ।

सोहन लाल—(चौंक कर) हँसने का दिन है, हाँ आज हँसने का दिन है ।

प्रभा—(दूर से) जीजी ! जीजी !! कहाँ हो ? (पास आकर) ओह ! मैं सबभी थी अकेली होंगी !

उपा—(प्रसन्न स्वर में) प्रभा, राज अपने आप निकल गया यहाँ से ।

प्रभा—(आश्चर्य से) निकल गया ? क्यों ? कहाँ गया है ?

उपा—सरला के पास । उसे अपनाने के लिये ।

प्रभा—(सन्तोप से) यह तो ठीक हुआ लेकिन... लेकिन यहाँ क्यों नहीं रहेगा ? कहाँ भटकेगा बिचारा ?

उपा—(दूर जाता स्वर) ऊँह ! मेरी बला से ! मेरा घर अनाथालय नहीं है, जो दुनिया भर के पापों को रखती फिरूँ ।

प्रभा—(दूर जाता स्वर) जीजी ! मैं सबभी नहीं...

सोहन लाल—(बीच में ही आर्द्र स्वर में) प्रभा यहाँ आओ !

प्रभा—(पास आकर धीमे स्वर में) कहिये !

सोहन लाल—आज तक मैं मौन रहा पर...पर आज पूछता हूँ क्या तुमने वह दवा.....

प्रभा—(बीच में ही) इस प्रसंग को न छेड़िये । मैं जा रही हूँ ।
(चूड़ियों की खनक) छोड़िये मेरा हाथ, मैं कहती हूँ छोड़िये मेरा हाथ ।

सोहन लाल—तुम बेकार भागने की कोशिश कर रही हो। मुझे मालूम हो गया है.....सब कुछ मालूम हो गया है ?

प्रभा—(धबकाकर) क्या मालूम हो गया है ?

सोहन लाल—यही कि तुम ने दवा नहीं खाई थी। काश ! तुमने यह सब पहले बता दिया होता।

प्रभा—(भीगे स्वर में) जिसे मैं भूलने की कोशिश करती हूँ उसे क्यों याद दिला रहे हैं ? लाख कोशिश करने पर भी मैं दवा नहीं खा सकी थी।

सोहन लाल—(रुद्ध कण्ठ से) मगर तुमने बच्चा अनाथालय में क्यों दे दिया था ?

प्रभा—सालों से छाती पर पत्थर रखे हूँ। ओह ! आज उस बच्चे की याद...(सिसक कर) न जाने कहाँ होगा ? जिन्दा होगा भी या नहीं। (जोर की सिसकियाँ)

सोहन लाल—धीरज रखो प्रभा, धीरज रखो। राज ही हमारा बच्चा है। सुना तुमने, राज ही हमारा बच्चा है।

प्रभा—(उत्तेजित स्वर में) राज ? पर जीजी तो कहती थीं...

सोहन लाल—वह सब भूठ था ! (ऊँचे और उत्तेजित स्वर में) उपा ! उपा !! मैं जा रहा हूँ राज को लेने ! अब वह यहीं रहेगा।

उपा—(दूर से पास आता स्वर) क्यों रहेगा यहाँ ? (पास आकर) मैं पृच्छती हूँ, क्यों रहेगा यहाँ ?

सोहन लाल—वह यहीं रहेगा उपा, अब वह यहीं रहेगा। हम धूम-धाम से सरला के साथ उसकी शादी करेंगे।

उपा—(तृढ़ स्वर में) लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगी, कभी नहीं होने दूँगी। किसी के पाप की सन्तान.....

सोहन लाल—(रुद्ध कण्ठ से) वह किसी और के पाप की सन्तान नहीं है, उपा ! मैं...मैं ही उसका पिता हूँ, उपा ! मैं ही उसका अभागा पिता हूँ। मैं जा रहा हूँ उसे लेने।

उषा—यह क्या कह रहे हो ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया !
 सोहनलाल—तुम नहीं समझोगी उषा, तुम कुछ नहीं समझोगी ।
 प्रभा ! तुम भी चलो मेरे साथ । राज मेरा कहना चाहे न
 माने, तुम्हारा जरूर मानेगा । चलो, जल्दी चलो (द्वार जता
 स्वर) राज यहीं रहेगा, यहीं रहेगा, यहीं रहेगा ।

[फेड आउट]

शैतान की वेटी

(यथार्थ पर आधारित आदर्शोन्मुख नाटक)

[प्रारम्भिक संगीत के बाद पृष्ठभूमि से प्लेटफार्म का कोलाहल उभरता है। फिर गार्ड की सीटी के बाद ही ट्रेन की सीटी का स्वर आता है। ट्रेन चलने की ध्वनि के साथ ही प्लेटफार्म का कोलाहल दूर होता जाता है। ट्रेन का स्वर पास आकर फिर पृष्ठभूमि में चला जाता है।]

मोहन—इस बार भी किस्मत ने हमारा साथ दिया, मोहनी।

मोहनी—तुम जिसे किस्मत कहते हो मैं उसे बुद्धि कहती हूँ, मोहन !

मोहन—चाहे कुछ कहलो, बात एक ही है। इस बार तो तुमने कमाल ही कर दिया।

मोहनी—(हँस कर) मुझे तो यह सोच-सोच कर हँसी आ रही है कि पुलिस हमारी तलाश शहर में कर रही होगी और हम फ़र्स्ट क्लास में मजे से बैठे सफर कर रहे हैं।

मोहन—और मुझे यह सोच-सोचकर हँसी आ रही है कि तुमने अपने नायाब एकिटिंग से जौहरी और डाक्टर को कैसा उल्लू बनाया। भाई बाह.....। जब जौहरी को सही बात मालूम हुई होगी तब क्या हाल हुआ होगा उसका ?

मोहनी—चेहरा फोटो खींचने लायक हो गया होगा। तीस हजार के माल से हाथ धोना मामूली बात नहीं है।

मोहन—मगर हमें तो उस माल के सिर्फ पन्द्रह हजार ही मिले।

मोहनो—चोरी का माल आधे पर बिकता ही है। भागे भूत की लँगोटी ही काफ़ी है। मैं तो समझती हूँ इस बार का शिकार काफ़ी मोटा रहा।

मोहन—इसमें क्या शक है ? अखबार वालों ने भी फ्रन्ट पेज पर छापी है यह खबर.....।

मोहिनी— (हँस कर) गालियाँ दी होंगी मुझे ?

मोहन—पहले वे तुम्हें रहस्यमयी सुन्दरी कहते थे, अब शैतान की बेटी कहते हैं ।

मोहिनी— (हँस कर) शैतान की बेटी.....। डेविल्स डाटर.....। नाम तो अच्छा दिया है ।

मोहन— लिखा है... (पढ़ता हुआ) रहस्यमयी सुन्दरी का एक और शिकार ! कानपुर का प्रसिद्ध जौहरी शैतान की बेटी द्वारा नाटकीय ढंग से ठगा गया !!

मोहिनी— इस बार का तरीका था भी बहुत नाटकीय । जानते हो, वह तरीका मेरे दिमाग में आया कैसे ? (रुक कर) एक बार पिता जी के साथ अँग्रेजी सिनेमा देखने गयी थी । पिक्चर की हीरोइन ने इसी तरीके से एक जौहरी को ठगा था ।

मोहन—(आश्चर्य से) अच्छा ! मुझे नहीं मालूम था कि पिक्चरों में भी अपने काम की चीजें होती हैं ।

मोहिनी—अभी तक तो अँग्रेजी खेलों में ही होती थीं । अब अपने यहाँ भी ऐसे खेल बनने लगे हैं, जिनसे हम नये-नये हथ-कण्डे सीख सकते हैं ।

मोहन—तब तो हमें ऐसे खेल जरूर देखने चाहियें । (खाँस कर) हाँ, आगे लिखा है— (पढ़ता हुआ) लखनऊ में पिछले सप्ताह एक सुन्दरी ने किस प्रकार एक धनी को ठगा था । इसका हाल आप पढ़ चुके हैं । लगता है वही सुन्दरी कानपुर पहुँच गयी है । समाचार मिला है कि उसने नगर के एक प्रसिद्ध जौहरी को बड़े नाटकीय ढंग से ठगा है । वह सुन्दरी पहले नगर के एक नामी डाक्टर के पास गयी और अपने को उस जौहरी की पत्नी बताया । उसने डाक्टर से कहा

कि मेरे पति मानसिक रोग से ग्रसित हैं, और वे हमेशा “रुपया लाओ-रुपया लाओ” कहते रहते हैं। डाक्टर महोदय ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की और इलाज करने का आश्वासन दिया। इसके बाद वह सुन्दरी डाक्टर की कार पर उस जौहरी की दूकान पर गयी जौहरी को उसने अपना परिचय डाक्टर की पत्नी कहकर दिया। लगभग तीस हजार के जेवर लेकर उसने जौहरी से अपना मुनीम साथ करने को कहा। जौहरी ने विल देकर मुनीम को साथ कर दिया। रास्ते में वह सुन्दरी उतर गयी। उसने ड्राइवर से कहा—“मैं डाक्टर साहब से बात कर आयी हूँ। इन्हें डाक्टर के पास ले जाओ। मैं भी अभी आती हूँ। ड्राइवर मुनीम को डाक्टर के पास ले गया...

मोहिनी—वस भी करो ! जो हो गया सो हो गया। अब आगे का क्या प्रोग्राम है।

मोहन—प्रोग्राम तो नागपुर पहुँच कर ही तय होगा। (हँसकर) वहाँ भी कोई न कोई आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा मिल ही जायेगा।

मोहिनी—चाहे आँख का अन्धा न भी हो, मगर गाँठ का पूरा होना चाहिये।

मोहन—यह ठीक है ! आँख वाले को भी अन्धा बनाना तुम्हारे बाँयें हाथ का खेल है। अगर इसी तरह हम दोनों मिलकर काम करते रहे तो लाखों कमा लेंगे।

मोहिनी—हाँ ! तब हम भी इन्सान की तरह रह सकेंगे, रोटी के लिये किसी का मुँह नहीं ताकना पड़ेगा, पेट की आग बुझाने के लिये (भारी स्वर में) तन का सौदा नहीं करना पड़ेगा।

मोहन—काश ! हमारा यह सपना सच हो सके ।

मोहिनी—जरूर होगा । इसी सपने को सच करने के लिये हम भूठ छल, कपट, और ठगी का सहारा ले रहे हैं । (धीमे स्वर में) मैं भूख और गरीबी के दिन भूली नहीं हूँ । मैं जानती हूँ कि पैसे के बिना आदमी आदमी नहीं, जानवर समझा जाता है ।

मोहन—मुझे भी बेकारों और भूख के दिन अच्छी तरह याद हैं । ईमानदारी से पेट भरने की लाख कोशिशें कीं, मगर किसी ने नौकरी न दी । समाज के सफेदपोश ठेकेदारों ने भिखारी समझ कर दुत्कारा, चोर-उचक्का कह कर पुलिस में देने की धमकी दी । मजबूर होकर पेट भरने के लिये, जेबें काटनी पड़ीं ।

मोहिनी—तुम पुरुष थे इसलिये समाज की ठोकरें सहते रहे और फिर अपना रास्ता बना लिया । मैं औरत थी-वह भी अकेली । लड़ने की शक्ति तो थी पर हिम्मत न थी । इसलिये झुकना पड़ा । (धीमे स्वर में) पर समाज के सामने नहीं, झुकी, खुद अपनी आत्मा के सामने झुकना पड़ा । और... और उस काली तूफानी रात में मैं नदी की तरफ चल दी.....

[धीमे संगीत के साथ पूर्व-स्मृति दृश्य प्रारम्भ । तूफान की उभरती हुई ध्वनि । तूफान की ध्वनि पास आकर फिर पृष्ठभूमि चली जाता है । नदी बहने का स्वर ।]

मोहिनी—(धीमे स्वर में स्वगत) जब ज़िन्दगी मौत से भी डरावनी हो जाये तब छुटकारे का एक ही रास्ता है...आत्म हत्या... । और कोई रास्ता नहीं—! कोई रास्ता नहीं !! अभी नदी के बहते हुये सर्द पानी में डूब जाऊँगी और फिर नौद, गहरी

नींद.....कभी न टूटने वाली नींद । फिर न भूख सतायेगी और न दुनिया की पापी निगाहें.....। (दूर से किसी की भारी पदचाप पास आती है ।) इधर कौन आ रहा है ?

मोहन—(दूर से पास आता हुआ स्वर) पुल पर कौन खड़ा है ?

मोहिनी — तुम कौन हो पृच्छने वाले ?

मोहन—(पाम आकर) आधी रात को नदी के पुल पर अकेली औरत.....। क्या डूबने का इरादा है ?

मोहिनी—दुनिया चैन से जीने नहीं देती तो क्या मरने भी न देगी ?

मोहन—जो जीना चाहते हैं, उन्हें जीने से कोई नहीं रोक सकता ।

मोहिनी—मगर मैं जीना नहीं चाहती । भगवान के लिये चले जाओ यहाँ से ! मुझे शान्ति से मरने दो ।

मोहन—जिन्दगी से भाग कर मौत की गोद में मुँह छिपाना कमजोरी है, बुज़दिली है ! हिम्मत से काम लो ।

मोहिनी—हिम्मत मैं हार चुकी हूँ ।

मोहन—हिम्मत कभी नहीं हारती । मरने का विचार छोड़ कर जीने की कोशिश करो, जीने के लिये लड़ना सीखो ।

मोहिनी—मैं औरत हूँ, कमजोर हूँ, बुज़दिल हूँ, मैं लड़ नहीं सकती... ..नहीं लड़ सकती...। (सिसकियों का स्वर)

मोहन—बहुत दुखी मालूम होती हो । क्या माँ-चाप से लड़कर आयी हो ?

मोहिनी—(सिसकते हुये) मैं अनाथ हूँ,..... । इस दुनिया में मेरा कोई नहीं । एकदम अकेली हूँ.....एक दम अकेली !

मोहन—अब तुम अकेली नहीं हो । आज से हम दोनों साथ-साथ लड़ेंगे ।

मोहिनी —विश्वास नहीं होता ।

मोहन—मुझ पर विश्वास नहीं ?

मोहिनी—खुद अपने पर विश्वास नहीं !

मोहन—देखो, बादल छट गये हैं। तूफान थम गया है। विश्वास का ध्रुव तारा चमकने लगा है। मैं भी तुम्हारी तरह सताया हुआ हूँ। मगर मैं लड़ना जानता हूँ। आज से हम दोनों लड़ेंगे—उस समाज से जिसने हमें भूख और गरीबी दी। हम बदला लेंगे समाज के उन ठेकेदारों से जिन्होंने हमारे ओठों की हँसी छीनकर आँखों को आँसू दिये।

मोहिनी—(धीमे स्वर में) लेकिन.....लेकिन यह कैसे हो सकता है ?

मोहन—यह मैं बताऊँगा। (रुक कर) क्या नाम है तुम्हारा ?

मोहिनी—मोहिनी !

मोहन—मेरा नाम मोहन है। मोहन और मोहिनी मिलकर सारे देश को कँपा देंगे। मेरी बुद्धि और तुम्हारा रूप...। अन्धी दुनियाँ को ठगने के लिये और क्या चाहिये ? चलो, आओ मेरे साथ...।

[धीमे संगीत के साथ स्मृति-दृश्य समाप्त। ट्रेन का स्वर उभर कर पास आता है और फिर पृष्ठभूमि में चला जाता है।]

मोहिनी—और सचमुच हमने दो सालों में ही सारे देश को कँपा दिया।

मोहन—आज देश के सभी अखबारों में रहस्यमयी सुन्दरी के कारनामों की धूम रहती है। बच्चे-बच्चे की जुवान पर शैतान की बेटी का नाम है।

मोहिनी—[अट्टहास करके] हाँ...सचमुच मैं शैतान की बेटी हूँ। हा...हा...हा...। शैतान की बेटी। (रुक कर गम्भीर स्वर में) मगर मुझे शैतान की बेटी बनाया किसने ? समाज के उन्हीं ठेकेदारों ने जो अपने को भगवान का बेटा समझते हैं।

मोहन—और आज भगवान के उन्हीं बेटी से शतान की बेटी गिन-गिन कर बढ़ते ले रही है ।

मोहिनी—(धीमे स्वर में जैसे स्वयं से बात कर रहा हो) आज मैं शैतान की बेटी हूँ, मगर कभी...कभी मैं भी इन्सान की बेटी थी । मोहन, आज तक मैंने तुम्हें अपने दुःख-दर्द की कहानी नहीं सुनायी । आज मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगी... सब कुछ ! मैं भी कभी भले घर का बेटी थी । पिता के पास धन था, समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी । मैं माँ की आँखों की पुतली और दीदी की राजदुलारी थी.....

[धीमे संगीत के बाद पूर्व-स्मृति दृश्य प्रारम्भ । मोहिनी का दूर से पास आता हुआ प्रसन्न स्वर ।]

मोहिनी—पिता जी ! पिता जी !! मैं पास हो गयी । (समीप आकर) फर्स्ट डिवीजन में ! यह देखिये । (अखबार खोलने की आवाज ।)

पिता—शाबाश बेटी ! (ऊँचे स्वर में) अरे, सुनती हो, मोहिनी पास हो गयी...फर्स्ट डिवीजन में !

माँ—(दूर से पास आता हुआ स्वर) अच्छा ! मैं तो पहले ही जानती थी कि (पास आकर) मेरी दोनों बेटियाँ होनहार हैं । अरे, बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ? मुँह मीठा कराओ बेटी का !

पिता—(हँसकर) यह भी अच्छी रही ! अरे, माँ तुम हो या मैं ?

माँ—(ऊँचे स्वर में) कन्चन, ओ कन्चन बेटी ! जल्दी से एक प्लेट में मिठाई तो ले आ ।

कन्चन—[दूर से] अभी लायी, माँ !

पिता—मुझे अपनी दोनों बेटियों पर अभिमान है । कन्चन को तरह मोहिनी भी बी० ए० हो गयी । आज मैं बहुत खुश हूँ.....।

कन्चन—(पास आकर) मैं अपने हाथ से खिलाऊँगी मिठाई मोहिनी को ! मुँह खोलो ! अरे, थोड़ा और ! हाँ, अब ठीक है ! यह रहा रसगुल्ला !

[पिता, माँ और कन्चन की सम्मिलित हँसी ।]

माँ—भगवान ऐसी बेटियाँ हर माँ का दे ।

पिता—बेटियाँ ? अरे, मेरे लिये तो यह बेटे हैं, बेटे !

माँ—(व्यंग्य से) तभी तो इन्हें घर से निकालने का नाम नहीं लेते यह नहीं समझते कि बेटियाँ परायी अमानत होती हैं ।

पिता—फिर बैठ गयीं अपना पचड़ा लेकर ।

माँ—तुम्हें तो मेरी बात पचड़ा हो लगती हैं । (रुक कर) तुम दोनों अन्दर जाओ ।

मोहिनी—(रूठकर) मैं नहीं जाऊँगी ।

पिता—हाँ, हाँ बेटी ! आ, तू मेरे पास बैठ !

माँ—अच्छा तू जा कन्चन ! (कन्चन की पदचाप दूर जाती है ।)
तुम्हें तो बस आराम-कुर्सी पर लेट कर अखबार पढ़ने के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं ?

पिता—और क्या किया करूँ, तुम्हीं बताओ ?

माँ—शतरंज खेलने और सिगार पीने से काम नहीं चलेगा ।

पिता—उम्र भर मेहनत करके पैसा कमाया है । अब बुढ़ापे में तो आराम कर लेने दो, मोहिनी की माँ !

माँ—आराम करने को कौन मना करता है ? (रुक कर) कन्चन की भी फिकर करो कुछ । सयानी लड़की घर में बिठाना ठीक नहीं ।

पिता—(निश्चिन्तता से) उसमें फिकर करने को क्या बात है ?
जिस दिन चाहूँगा, रिश्ता तय कर दूँगा ।

माँ—घर बैठे रिश्ते तय नहीं होते ।

पिता—कन्चन जैसी पढ़ी-लिखी, सुशील चतुर और सुन्दर लड़की के लिये लड़कों की क्या कमी ?

मोहिनी—हाँ पिता जी ! बड़े-बड़े डिप्टी-कलेक्टर दीदी से शादी करने को तैयार हो जायेंगे ।

माँ—तुमसे लाख बार मना किया कि बीच में न बोला कर, मगर तू मानती ही नहीं...।

मोहिनी—(रूठे स्वर में) पिता जी...!

पिता—तुम क्यों हर वक्त डाँटती रहती हो बेटियों को ?

माँ—तुमने तो सिर पर चढ़ा रक्खा है दोनों को । (हक कर) मैं कहती हूँ कन्चन के लिये लड़का देखने जाओगे या नहीं ?

पिता—अच्छा वाचा जाऊँगा, जरूर जाऊँगा । बस...?

माँ—कब ?

पिता—जब तुम हुक्म दो ।

[मोहिनी की हँसी का स्वर ।]

माँ—(डाँट कर) फिर हँसी तू ! हाँ, तो कल ही चले जाओ ।

पिता—कल ही चला जाऊँगा । अब तो खुश हो ! हाँ, अब ज़रा हँस तो दो ।

[तीनों के हास्य के सम्मिलित स्वर के साथ फेड आउट । ट्रेन के उभरते हुये स्वर के साथ पुनः फेड इन । ट्रेन का स्वर पास आकर फिर दूर चला जाता है ।]

मोहिनी—और दूसरे दिन ही पिता जी दीदी के लिये लड़के की खोज में चले गये । एक सप्ताह के अन्दर ही दीदी की शादी तय हो गयी । माँ ने बड़ी उमंग से दहेज का सामान इकट्ठा किया, कपड़े खरीदे, जेवर बनाये ! बारात आने में दो-तीन दिन रह गये । मगर...मगर एक रात को...

[धीमे सगीत के बाद दूर पर कुत्तों के भौकने की आवाज़ । द्वार पर जोर का आघात ।]

पिता—कौन है ?

माँ—(धीमे स्वर में) आधी रात को कौन आया है ?

[द्वार खटखटाने की आवाज और तेज होती है ।]

पिता—कोई नाते-रिश्तेदार होगा । (ऊँचे स्वर में) खोलता हूँ,
भाई । (द्वार खोलने की आवाज) कौन...? (कम्पित स्वर में)
डा...कू...!

माँ—(जोर से) डाकू...!

[रुदन, चीखें, फिर गोली चलने की आवाज]

पिता—मारो मत, किसी को मारो मत । यह रही तिजोरी की कुन्जी
ले जाओ, सब कुछ ले जाओ !

[तिजोरी खोलने की आवाज]

माँ—उसमें कन्चन के दहेज का जेवर भी है । (तेज और दृढ़ स्वर
में) मैं नहीं ले जाने दूँगी...नहीं ले जाने दूँगी ।

कन्चन—सामने से हट जाओ माँ । (सिसक कर) ले जाने दो...
सब कुछ ले जाने दो ।

माँ—(दृढ़ स्वर में) नहीं मैं नहीं हटूँगी ।

मोहिनी—(भीत स्वर में) माँ, हट जाओ सामने से । देखो उसकी
पिस्तौल उठ रही है ! माँ हट जाओ (चीख कर) हट
जाओ, माँ !

पिता—हट जाओ, मोहिनी की माँ ! वह तुम्हें गोली मार देगा...
गो...ली मार...दे...गा !

[गोली चलने की आवाज के साथ ही माँ का चीख कर गिरना ।

कन्चन और मोहिनी का रुदन, पिता की करुण सिसकियाँ ।

डाकूओं का भाग कर दूर जाना । दूर से गोली चलने की
आवाजें ।]

पिता—(दृष्टे स्वर में) मर गयी...तुम्हारी माँ मर गयी...।

कन्चन और मोहिनी—(सिसकते हुये) माँ...माँ...! (रुदन)

[रुदन और सिसकियों के स्वर के साथ ही फेड आउट । ट्रेन के उभरते हुये स्वर के साथ फेड इन । ट्रेन का स्वर पृष्ठभूमि में चला जाता है ।]

मोहिनी—(भारी कण्ठ से) माँ को डाकुओं ने मार डाला । माँ जान देकर भी तिजोरी की रक्षा न कर सकी । डाकू सब कुछ लूट ले गये...।

मोहन—(सहानुभूति के स्वर में) यह तो बहुत बुरा हुआ । फिर क्या हुआ ? बारात आयी ?

मोहिनी—हाँ, बारात आयी, मगर...मगर...।

[धीमा संगीत । पृष्ठभूमि से शहनाई का उभरता हुआ स्वर ।]

पिता—(दयनीय स्वर में) अब हमारी लाज आपके हाथ में है, समधी साहब !

समधी—(कठोर स्वर में) गोया कि यह सरासर धोखा है । भाँवरे तभी पड़ेंगे जब ठहरा हुआ दहेज सामने आ जायेगा ।

पिता—ठहराये हुये दहेज से कहीं ज्यादा देने की इच्छा थी, समधी साहब ! मगर डाकू सब कुछ लूट ले गये । बेटी की माँ भी...(कण्ठ रुँध जाता है)

समधी—गोया कि हम इसके जिम्मेदार नहीं हैं । हमने बराबर का घर देखकर रिश्ता तय किया था । अब यह शादी नहीं हो सकती । हम एक कंगाल की बेटी को बहू नहीं बना सकते ।

पिता—ऐसा न कहिये, समधी साहब, ऐसा न कहिये ! भगवान के लिये हमारे हाल पर तरस खाइये । अगर बारात वापस गयी तो मैं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा ।

समधी—गोया कि मेरा फैसला अटल है । बारात वापस जायेगी । (ऊँचे और कठोर स्वर में) बारात वापस जायेगी ।

। पृष्ठभूमि से शहनाई का स्वर पास आता है और पास आकर

सहसा टूट जाता है। मोहिनी और कन्चन की सिसकियों का स्वर उभरता है।]

पिता—(रुद्ध कण्ठ से) यह दिन दिखाने से पहले उठा क्यों न लिया भगवान ! अब मैं मोहिनी की माँ को क्या जवाब दूँगा।
(दूर जाता हुआ स्वर) अब मैं मोहिनी की माँ को क्या जवाब दूँगा।

मोहिनी—दीदी ! आँसू पोंछ डालो। कब तक रोती रहोगी ?

कन्चन—(मिसकते हुये) रोना तो ज़िन्दगी भर है।

मोहिनी—ऐसा न कहो दीदी। हिम्मत से काम लो। जब तुम्हीं हताश होगी तो पिता जी का क्या हाल होगा ?

कन्चन—यह सब क्या हो गया, मोहिनी, यह सब क्या हो गया ? मेरा दिल बैठा जा रहा है। हाय...! मेरे कारण पिता जी को यह दिन देखना पड़ा। कितनी अभागिन हूँ मैं। (सिसकियों के साथ) पैदा होते ही मर क्यों न गयी...।

[कन्चन और मोहिनी की सिसकियाँ। धीमे संगीत के पश्चात् ट्रेन का स्वर पास आकर फिर दूर जाता है।]

मोहिनी—दीदी का दिल टूट गया। वे कमजोर थी। हर औरत कमजोर होती है। (भारी कण्ठ से) दूसरे दिन ही उन्होंने फाँसी लगाकर जान दे दी। (सिसकी का स्वर)

मोहन—(धीमे स्वर में) बहुत जुल्म हुये हैं तुम पर, मोहिनी...।

मोहिनी—पिता जी को इस सदमे ने हमेशा...हमेशा के लिये तोड़ दिया—उन्होंने हँसना बन्द कर दिया, बोलना बन्द कर दिया। गुमसुम से बैठे रहते और एक टक आकाश की ओर देखा करते। मैं उन्हें लेकर दूसरे शहर में आ गयी। छोटा सा मकान किराये पर लेकर रहने लगी।

मोहन—बस करो, मोहिनी, बस करो !

मोहिनी—सफेद पोश शरीफों के काले कारनामे सुन लो।

(रुक कर) दो पेट भरने के अलावा किराया देने का भी सवाल सामने था । नौकरी की तलाश में दफ्तरों की धूल छानी । नौकरी देने को हर एक तैयार था, मगर...मगर उसके बदले में सब मुझे चाहते थे...मेरा शरीर चाहते थे...।

मोहन—(घृणा से) भूखे भेड़िये...।

मोहिनी—और तब मैंने समझा कि इस दुनिया में इन्सान नहीं, शैतान रहते हैं । मुझे नफरत हो गयी.. इस समाज से, समाज के ठेकेदारों से । (रुक कर) और तभी पिता जी बीमार हो गये । दवा के लिये पैसे तक न थे । उनकी जान बचाने के लिये भीख माँगी ! (सिसकी) दवा लेकर घर गयी तो...तो...पिता जी...(रुदन)...

मोहन—विपत्ति आती है तो चारों ओर से आती है ।

मोहिनी—(कुछ सयत होकर) मेरे लिये ससार में अँधेरा था... घोर अँधेरा ! और उस अँधेरे में इन्सान की शक्ल में घूमने वाले खूँखवार भेड़ियों की खूनी आँखें मुझे घूर रही थीं । जिन्दगी मौत से ज्यादा डरावनी लगने लगी और फिर...

मोहन—(बीच में ही) तुम नदी की ओर चल दीं ।

मोहिनी—हाँ ! मगर तुमने मुझे सहारा दिया, नयी जिन्दगी दी, लड़ना सिखाया । आज मैं खुश हूँ...बहुत खुश हूँ...। खूँखवार भेड़ियों से बदले ले रही हूँ । और तब तक लेती रहूँगी जब तक जिन्दा रहूँगी ।

मोहन—(ताली बजा कर) हियर...हियर...! यह सही स्पिट है । भूखे नंगे जिन्दावाद !

[ट्रेन की सीटी का स्वर ! ट्रेन का स्वर उभर कर पास आता है ।]

मोहिनी—शायद स्टेशन पास ही है ।

मोहन—हाँ ! पाँच मिनट बाद ही हम नागपुर में होंगे... (हँस कर)
नागपुर...हमारी नयी शिकारगाह...

मोहिनी—शिकार मोटा होना चाहिये ।

मोहन—बेफिक्र रहो । तुम होटल में आराम करना । मैं शहर में घूम कर सब समझ लूँगा । मगर हाँ, इस बार कौन सा तरीका काम में लाओगी ?

मोहिनी—एक दम नया ! ऐसी कान्फीडेन्स ट्रिप जो हिन्दुस्तान के लिये एक दम नयी होगी ।

[दोनों के हास्य के सम्मिलित स्वर के साथ फेड आउट ।]

अन्तराल के बाद

[प्याले-तश्तरियों की आवाज़ । चम्मच रखने-उठान की आवाज़ ।]

मोहन—पता लगा आया ।

मोहिनी—पहले चाय पीलो । फिर बातें करना ।

मोहन—(हँस कर) बहुत मोटा आसामी है । अरे, थोड़ा मक्खन और लगाओ टोस्ट पर ! देखती नहीं हो, कितना थक गया हूँ । सारा शहर छानना पड़ा है ।

मोहिनी—(हँस कर) तुम्हारा शरीर थक गया है, और मेरा दिमाग़ । दिन भर सोचती रही हूँ ।

मोहन—(हँस कर) उस रात को मैंने कहा था...तुम्हारा रूप और मेरी बुद्धि...। मगर अब तो रूप भी तुम्हारा और बुद्धि भी तुम्हारी । अपना तो सिर्फ़ शरीर चलता है ।

[दोनों का सम्मिलित हास्य । प्याले-तश्तरियों की आवाज़ ।]

मोहिनी—हाँ, अब बताओ ।

मोहन—बहुत भोला पंछी छोटकर आया हूँ ।

मोहिनी—(प्रसन्न स्वर में) अच्छा ?

मोहन—हाँ ! दो-तीन महीने हुये उसे डब्बी की लाटरी में साढ़े सात लाख रुपये मिले हैं । आज ही बैंक से उसने बीस हजार रुपये निकाले हैं । नोटों का बन्डल रात भर उसके घर में ही रहेगा ।

मोहिनी—(हर्ष से) भाग्य हमारा साथ दे रहा है, मोहन । नाम क्या है उसका ?

मोहन—हरीश । उसे ठगना बहुत आसान है ।

मोहिनी—क्यों...?

मोहन—क्योंकि वह शराब पीता है, क्यॉरा है, रामदास सेठ की एक एकांत काटेज में अकेला ही रहता है ।

मोहिनी—ठीक है । आज रात को ही हम माल साफ कर देंगे । रात को दो बजे जो मेल बम्बई जाता है उसमें दो बर्थ रिजर्व करा लो ।

मोहन—लेकिन...

मोहिनी—अपना काम आधी रात तक पूरा हो जायगा ।

मोहन—(प्रसन्ता से) तब ठीक है । सुबह होते-होते हम यहाँ से दूर, बहुत दूर होंगे । हाँ, तुम्हारी तरकोब क्या होगी और मुझे क्या करना होगा ?

मोहिनी—अभी बताती हूँ...। सुनो...।

[मोहिनी बोलते-बोलते पूर्ण फेड आउट ।]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठभूमि से बादलों की गरज तथा बिजली की कड़क के साथ वर्षा का स्वर । तेज हवा के झोंकों से खिड़कियों के खुलने-बन्द होने की आवाज ।]

हरीश—(गुनगुनाते हुये) अब्र है, साकी है, मय है, जाम है । वाह...वाह...। अभी से बहकने लगे बेटा हरीश ? साकी कहाँ है ? (दीवार धड़ी से घण्टे बजने की ध्वनि) ११ बज

गये । बेटे हरीश सो जाओ अब । सुबह बम्बई जाना है ।

[हरीश के वाक्य के बीच में ही दूर से मोहिनी की चीख का स्वर आता है । फिर जोर से द्वार खटखटाने की आवाज]

मोहिनी—(घबराये स्वर में) खोलिये, दरवाजा खोलिये ! (फिर चीख)

हरीश—(दरवाजा खोलने की ध्वनि के बाद) कौन है ? क्या बात है ?

ओह...आप, आप तो एकदम भोग गयी है ।

मोहिनी—बचाओ, भगवान के लिये मुझे उस गुण्डे से बचाइये ।

हरीश—गुण्डा...? कहाँ है गुण्डा ?

मोहन—(पास आकर धमकी के स्वर में) बाबू जी, आप हमारे बीच में न पड़िये । यह लड़की मेरी बीवी है । आप हट जाइये सामने से ।

मोहिनी—यह झूठ बोल रहा है । मैं इसकी कोई नहीं हूँ...कोई नहीं हूँ । यह गुण्डा है, लोफर है ।

हरीश (कठोर स्वर में) क्यों वे गुण्डे के बच्चे । शर्म नहीं आती परायी बहू-बेटियों को छेड़ते ? अबे, भागता है या बुलाऊँ पुलिस को ?

मोहन—(चेतावनी देकर) जा तो रहा हूँ, मगर इतना याद रखिये कि इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा । बदला लेकर मानूँगा ।

हरीश—जा, जा । बहुत देखे हैं तीसमार खाँ ! जानता नहीं, मेरा नाम भी हरीश है ! (द्वार बन्द करने का आवाज) अरे, आप तो ठण्ड से काँप रही हैं । जाइये, दूसरे कमरे में जाकर कपड़े बदल लीजिये । तब तब मैं चाय बनाता हूँ ।

मोहिनी—(कम्पित स्वर में) आपकी श्रीमती जी ... ?

हरीश—ओह, मैंने अभी शादी नहीं की है । मगर...मगर आप डरें नहीं ! आप मेज पर रखी बोतल की तरफ देख रही हैं । (हँस कर) हाँ, मैं शराबी हूँ, जुआरी हूँ, ...मगर फिर

भी इन्सान हूँ । देखिये, आप के आँठ नीले पड़ रहे हैं । मेरा स्लीपिंग सूट पहन लीजिये । संकोच न कीजिये । हाँ, हाँ, इस कमरे में ! पर्दा हटाकर चली जाइये । वस, एक मिनट में चाय तैयार करता हूँ ।

[मेज पर स्टोव आदि रखने की आवाज के बाद स्टोव जलाने की ध्वनि । प्याले तश्तरियों की आवाज]

हरीश—(स्वागत धीमे स्वर में) विचारी भूखी मालूम होती है । मगर घर में...! खैर, आधी रोटी ही सही ! (हककर) अरे, आप स्लीपिंग सूट में तो बहुत अच्छी लग रही हैं । लाइये, गीले कपड़े मुझे दीजिये ।

मोहिनी—(संकुचित स्वर में) मैं ही फैलाये देती हूँ । (एक क्षण बाद) हटिये, मैं चाय बना लूँगी ।

हरीश—लेकिन.....

मोहिनी—हटिये भी... । रोज अपने हाथ की पीते हैं, आज मेरे हाथ की ही सही । आप अँगोठी के पास आराम कुर्सी पर बैठिये । मैं...

हरीश—(बीच में ही) जो आज्ञा... ।

[प्याले-तश्तरियों की ध्वनि । चम्मचों की आवाज]

मोहिनी—यह लीजिये ! चाय तैयार है । यह लीजिये स्लाइस... ।

हरीश—स्लाइस आप खाइये ! मुझे भूख नहीं है ।

मोहिनी—(हस कर) आप चेहरा देखकर पेट का हाल जान लेते हैं । मैंने सुबह से कुछ नहीं खाया है । (हक कर) अब जाकर जान मैं जान आयी ।

[मेज पर प्य ले आदि रखने की आवाज]

हरीश—मुझे अफसोस है कि घर में खाने के लिये आधी रोटी के अलावा...

मोहिनी—उस आधी रोटी ने मुझे मरने से बचा लिया है । मैं...मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, हरीश बाबू ?

हरीश—धन्यवाद शब्दों से नहीं, कामों से दे सकती हैं !

मोहिनी—(हँस कर) मैं हर आज्ञा मानने को तैयार हूँ ।

हरीश—तो भगवान के लिये अब कभी इतनी रात को घर से अकेले न निकला कीजिये । जमाना बहुत बुरा है (रुक कर) शायद आप पिक्चर देखने गयी होंगी ?

मोहिनी— (धीमे स्वर में) नहीं...

हरीश—फिर किसी सहेली के यहाँ गयी होंगी । चलिये, आपको घर पहुँचा दूँ, कहाँ रहती हैं आप ?

मोहिनी—घर... ? मैं बे-घरवार हूँ, हरीश बाबू !

हरीश—(हस कर) देखिये, मजाक किसो और बक्त कीजियेगा । आपके माता-पिता परेशान हो रहे होंगे । और फिर... मैं... मैं बदनाम आदमी हूँ । आपका ज्यादा देर तक यहाँ ठहरना ठीक नहीं । कोई देखेगा तो...

मोहिनी—(बीच में ही सिसक कर) मगर मैं ठीक कहती हूँ हरीश बाबू ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई घर नहीं, कोई अपना नहीं । लेकिन आपको और कष्ट न दूँगी । पानी रुक गया है । गुन्डा भी चला गया होगा । अब...अब...मैं भी चली जाऊँगी ।

हरीश—मगर आप जायेंगी कहाँ ? आखिर...

मोहिनी—(बीच में ही) मरने वाले के लिए जगह की क्या कमी ? कहीं भी जाकर मर जाऊँगी ।

हरीश—(धबरा कर) क्या क्या आत्महत्या करोगी ?...

मोहिनी—और कोई रास्ता नहीं है । जिन्दगी से हार गई हूँ । जहाँ जाती हूँ, माँस के लोभो भेड़िये पीछा करते हैं । (रुक कर) नौकरी की तलाश में दिल्ली से यहाँ आयी थी । सोचा था मगर नहीं.....यहाँ भी इन्सान के रूप में हैवान ही मिले । आज एक साहब ने इन्टरव्यू के लिए घर पर बुलाया था ।

दो सौ की नौकरी दे रहे थे, मगर चाहते थे कि...कि...
(मिसकने लगती है)

हरीश—लेकिन दुनिया में अब भी इन्सानियत है। घबराओ मत। सब ठीक हो जायेगा। अब तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। भगवान की दया से मुझे साढ़े सात लाख का ईनाम मिला है। हम उम्र भर चैन से रह सकते हैं।

मोहिनी—मगर किसी के टुकड़ों पर...

हरीश—ऐसा न कहो ! तुम इस घर में मेरी बहन की तरह रहोगी।

मोहिनी—(चौक कर) जी...व...ह...न ?

हरीश—हाँ, बहन की तरह ! (रुद्ध कण्ठ से) कभी एक बहन थी...

मगर भगवान ने उसे उठा लिया...। आज से तुम मेरी बहन हो। और जब बहन मिल गई फिर पीने की भी क्या जरूरत है। उसी दुख को भुलाने के लिए पीता था। अब नहीं पिऊँगा...नहीं पिऊँगा...

[बोतल-गिलास फर्श पर फेंकने की आवाज]

मोहिनी—हरीश बाबू...।

हरीश—हरीश बाबू नहीं, हरीश भैया कहो। सालों से “भया” सुनने के लिये तड़प रहा हूँ। यह लो तिजोरी की कुन्जी ! आज ही बीस हजार रुपया बैंक से निकाला है।

मोहिनी—(आश्चर्य से) बीस...हजार... ! इतना रुपया क्यों निकाला ?

हरीश—निकाला था बम्बई जाकर रेस खेलने के लिये ! मगर नहीं, अब रेस बेस कुछ नहीं। वह रुपया तुम्हारा है।

जैसा चाहना, खर्च करना। अब सो जाओ, कान्ता... !

मोहिनी—मेरा नाम कान्ता नहीं, मोहिनी है।

हरीश—आज से तुम मोहिनी नहीं, कान्ता हो...। हरीश की बहन कान्ता...। समझीं ? अब सो जाओ...। मुझे-मुझे नींद आ रही है।

[बोलते-बोलते फेड आउट । क्षणिक विराम के बाद फिर फेड इन ।
द्वार पर हल्की थपकी फिर द्वार खोलने की ध्वनि]

मोहन—(धीमे स्वर में) स्लीपिंग ड्रग ने अपना काम किया ?

मोहिनी—मैंने हरीश को स्लीपिंग ड्रग नहीं दिया; लेकिन...वह सो गया है ।

मोहन—ठीक है ! जल्दी करो, मोहिनी ! गाड़ी का वक्त हो रहा है ।

मोहिनी—(धीमे स्वर में) न जाने क्यों आत्मा हरीश को ठगने के लिये तैयार नहीं ।

मोहन—पागल मत बनो । ऐसे शिकार बार-बार नहीं मिलते ।

मोहिनी—मोहन ! हरीश में मैंने नयी इंसानियत का रूप देखा है । मुझे विश्वास हो गया है कि अभी संसार से मनुष्यता का लोप नहीं हुआ है । नहीं, मैं हरीश के साथ विश्वासघात नहीं कर सकती, नहीं कर सकती । चलो, हम लोग किसी दूसरे शिकार की खोज करेंगे ।

मोहन—(कड़े स्वर में) लेकिन मैं हाथ में आया शिकार छोड़ने वाला नहीं हूँ ? रुपये कहाँ रखे हैं ?

मोहिनी—तिजोरी में । और हरीश ने तिजोरी की कुन्जी मुझे दे दी है ।

मोहन—यह तो और भी अच्छा हुआ (आदेश के स्वर में) लाओ, चाभी मुझे दो ।

मोहिनी—(दृढ़ता से) चाभी नहीं दूँगी ।

मोहन—(कड़े स्वर में) मोहिनी ! क्या मेरे उपकारों का यही बदला है ? क्या इसी दिन के लिये मैंने तुम्हें मरने से बचाया था ?

मोहिनी—चाहो तो मेरी जिन्दगी ले लो मगर (रुद्ध कण्ठ से) हरीश को न लूटो । उसने मुझे और लोगों की तरह भूखी निगाहों से नहीं देखा, मोहन ! वह देवता है, देवता ! (रुककर) उसने

मुझे वहन बनाया है... उसका दिल टूट जायेगा, मोहन,
उसका दिल टूट जायेगा...(सिसकियाँ)

मोहन—(कठोर स्वर में) कुन्जी सीधी तरह दोगी या नहीं ?

हरीश—(दूसरे कमरे से) यह कौन बोल रहा है ? (पाम आकर)

अच्छा, तुम फिर आ गये ?

(तेज स्वर में) खैर चाहते हो तो निकल जाओ अभी घर से,
वरना... ।

मोहन—(हँसकर) गीदड़ शेर को धमकी दे रहा है । देखते हो,
मेरे हाथ में क्या है ? रिवाल्वर... । मोहिनी, चाभी देती हो
या नहीं ?

मोहिनी—नहीं...! नहीं...!! नहीं !!!

हरीश—(न समझने के ढंग से) चाभी...कैसी चाभी ?

मोहन—(अट्टहास करके) जनाब, जानते हैं, यह लड़की कौन है ?
शैतान की बेटी । अखबारों में नाम पढ़ा होगा । हम दोनों
साथी हैं । आपकी तिजोरी साफ करने के लिये यह जाल
रचा था... । समझे ... ?

हरीश—(अविश्वास के स्वर में) तुम झूठ बोलते हो ।

मोहन—पूछ लो...इसी से... ।

हरीश—क्या...क्या...यह सच है ?

मोहिनी—(टूटे स्वर में) हाँ समाज के सफेद पोश ~~वै~~ वानों ने मुझे
शैतान की बेटी बना दिया था, आज आपकी इन्सानियत ने
शैतान की बेटी का गला घोट दिया । (आतुर स्वर में) अब
मैं फिर इन्सान बनना चाहती हूँ... । मुझसे नफरत न
कीजिए, हरीश बाबू, नफरत न कीजिये ।

हरीश—जो गिर कर उठना जानता है वही इन्सान है । मेरे दिल
में तुम्हारे लिए और ज्यादा जगह हो गई है । तिजोरी की
कुन्जी इस लफंगे को दे दो । बीस हजार लेकर ही अगर यह

शैतान पीछा छोड़ दे तो... ।

मोहिनी—(बीच में ही) कुन्जी आप मुझे सौंप चुके हैं...बहन बना-
कर... । जान देकर भी तिजोरी की रक्षा करूँगी ।

मोहन—(कठोर स्वर में) मुझे अपना खून करने पर मजबूर न
करो... ।

मोहिनी—चाभी मैं नहीं दूँगी...नहीं दूँगी...नहीं दूँगी... ।

[सहसा गोली चलने के साथ ही मोहिनी की चीख और उसके
गिरने की आवाज । मोहन के मागने का स्वर तथा पुलिस की सीटी
की तीव्र गूँज]

हरीश—(रुद्ध कण्ठ से) यह क्या किया तुमने ? रुपया इन्सान से
ज्यादा प्यारा नहीं होता, मोहिनी !

मोहिनी—(टूटे स्वर में) मो...हिनी... ! नहीं...मोहिनी...बै...ता...
न की...वे...टी...थो...मैं...कान्ता हूँ...कान्ता...इन्सान की
व...ह...न...हरी...श...भैया...च...मा...

[मोहिनी का स्वर सहसा रुक जाता है । हरीश के मुख से
सिसकी निकल जाती है ।]

हरीश—(सिसकते हुये) शैतान ने इन्सान का खून कर दिया
शैतान ने इन्सान का खून कर दिया... । मगर नहीं....
इन्सानियत कभी नहीं मरती ... इन्सानियत कभी नहीं
मरती ! शैतान की बेटी मर गयी, मगर इन्साग की बेटी जिंदा
रहेगी... (टूटते हुये स्वर में) इ...न्सान की वे...टी...हमेशा
जि...न्दा...रहेगी ।

[करुण संगीत तथा हरीश की सिसकियों के मध्य फेडआउट

खँडहरों की आत्मा

[ऐतिहासिक घटना पर आधारित रूपक]

[प्रारम्भिक सगीत के बाद ट्रेन का स्वर पृष्ठभूमि से उभर फिर पृष्ठभूमि में जाकर विलीन हो जाता है। उसके बाद बस का स्वर, हार्न की आवाज़ और बच्चों के हास्य का सम्मिलित स्वर]

आलोक—दीदी, क्या यही विदिशा है ? आप तो इसकी बहुत तारीफ कर रही थीं ।

दीदी—देखो आलोक, जिस जगह हम खड़े हैं, आज उसका नाम मिलसा है ! मगर कभी यहीं विदिशा की प्रसिद्ध नगरी थी ।

आलोक—(असन्तोष से) होगी । मगर आज तो यहाँ सिवाय खण्डहरों के और कुछ नहीं । मैं तो थक गया हूँ आप । और बच्चों को खण्डहर दिखाइये । मैं तब तक सुस्ता लूँ । ओह, आँखें भपकी जा रही हैं ।

[एक क्षण बाद तीव्र झंकार स्वर । फिर किसी नारी की हँसी की आवाज़]

आलोक—(डर कर) यह कौन हँस रहा है ?

विदिशा—(हँस कर) मुझे नहीं पहचानते ? ठीक भी है । तुम्हारी आँखें तो केवल खण्डहरों को देख सकती हैं । (हँसी) मैं इन खण्डहरों की आत्मा हूँ । समझे, मैं इन खण्डहरों की आत्मा हूँ ।

आलोक—(आश्चर्य से) खण्डहरों की आत्मा ?

विदिशा—हाँ, खण्डहरों की आत्मा ! मेरा नाम विदिशा है । मेरी कहानो सुनोगे ?

आलोक—सुनाइये । जरूर सुनूँगा ।

विदिशा—मेरा इतिहास बहुत पुराना है । चन्द्रवंशो महाप्रतापी राजा ययाति का नाम तो तुमने सुना ही होगा । उनके वंश की एक शाखा हैहय के नाम से प्रसिद्ध हुई । इस प्रदेश पर उस शाखा का बहुत दिनों तक राज्य रहा । मैं उनके राज्य की राजधानी थी ।

आलोक—(आश्चर्य से) अच्छा ?

विदिशा—हाँ! तब मेरा नाम सारे देश में था । आज जहाँ तुम खण्डहर देख रहे हो वहाँ बड़े-बड़े प्रासाद थे । उससे वाद साकेत के सूर्यवंश का साम्राज्य पूरे देश में फैल गया । महाराज रामचन्द्र.....

आलोक—(बीव हो में) आप का मतलब भगवान रामचन्द्र से है न?

विदिशा—हाँ ! उनके छोटे भाई शत्रुघ्न इस प्रदेश के शासक थे ।

तब भी मैं इस प्रदेश की राजधानी थी ।

आलोक—तब तो आप तीर्थों से भी अधिक पवित्र हैं । यहाँ आकर मेरा जीवन धन्य हो गया ।

विदिशा—और फिर अन्धकार....घना अन्धकार.... ! उस अँधेरे में मेरा वैभव छिप गया । परन्तु शीघ्र ही प्रकाश की एक किरण आयी और... ..

[पृष्ठभूमि में 'बुद्ध शरणं गच्छामि,' 'सर्व शरणं गच्छामि,' 'धम्म शरणं गच्छामि' का स्वर उभरता है । स्वर निकट आकर फिर पृष्ठभूमि में चला जाता है । पृष्ठभूमि से फिर विदिशा का स्वर उभरता है ।]

विदिशा—और शीघ्र ही मेरी गिनती बौद्ध धर्म के मुख्य केन्द्रों में होने लगी । यहाँ स्तूप बने, विहार बने ।

आलोक—लेकिन स्तूप और विहार तो कहीं दिखाई नहीं देते ?

विदिशा—सब मेरी छती के नीचे दबे पड़े हैं । जो खोजने की चेष्टा करेगा उसे उनके अवशेष अब भी मिलेंगे । (रुक कर)

उसी समय नन्द-वंश का नाश और मौर्य-साम्राज्य का उदय हुआ । और एक दिन मुझे राजकुमार अशोक के दर्शनों का सौभाग्य मिला... ।

[विदिशा के अन्तिम वाक्य के साथ फेड आउट । पृष्ठ भूमि से 'राज कुमार...की जय कुमार अशोक की जय' का घोष ।]

अशोक—यही विदिशा नगरी है । कितनी समृद्ध, कितनी विशाल ! सेनापति, वह सुन्दरी कौन है ? लगता है भूलोक पर अप्सरा उतर आयी है ।

युवती—(दूर से पास आता हुआ स्वर) मैं विदिशा की ही श्रेष्ठ कन्या हूँ, राजकुमार ! आपके दर्शन करने आयी हूँ !

अशोक—(धीमे स्वर में स्वागत) दृष्टि-कन्या ! ओह...कितनी सुन्दर ! (ऊँचे स्वर में) देवि ! आपने आने का कष्ट किया इसके लिए कृतज्ञ हूँ । क्या नाम है आपका ?

युवती—(संकोच से) देवी, राजकुमार !

अशोक—आप वास्तव में देवी हैं । किसी मानवी में इतना सरल सौन्दर्य मैंने कभी नहीं देखा...कभी नहीं देखा !

[बोलते-बोलते फेड आउट । फिर विदिशा का स्वर उभरता है ।]

विदिशा—और राजकुमार अशोक देवी पर अनुरक्त हो गये । देवी ने एक कन्या को जन्म दिया । राजकुमार अशोक सम्राट बने, किन्तु...किन्तु अभागिन देवी को साम्राज्ञी बनने का अवसर न मिला । वह विचारी जीवन भर यहीं रही ।

आलोक—क्या अशोक देवी को एक दम भूल गये ?

विदिशा—कभी-कभी उनका आगमन यहाँ होता रहा, किन्तु इससे क्या होता है । देवी का वास्तविक स्थान यहाँ नहीं, पाटलिपुत्र में था । देवी की आत्मा कराहती रही और उसी के अभिशाप से अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य-साम्राज्य का

पतन प्रारम्भ हो गया। मौर्य-वंश का अन्तिम राजा था बृहद्रथ। वह बहुत दुर्बल और अत्याचारी था। एक रात को...

[बोलते-बोलते फेड आउट। रात की निस्तब्धता। बृहद्रथ के घर्घरी की ध्वनि। पुण्य मित्र की भारी पदचाप पास आती है।]

पुण्यमित्र—सम्राट बृहद्रथ ! उठकर बैठिये।

बृहद्रथ—(चौक कर) कौन है ? ओह, सेनापति पुण्यमित्र ! मैं तो डर गया था। (हक कर) आप मेरी ओर इस तरह घूर क्यों रहे हैं ? आपके हाथ में नंगी तलवार क्यों है ?

पुण्यमित्र—(कठोर स्वर में) सम्राट, तलवार उसी के हाथ में शोभा देती है जिसके शरीर में बल हो, हृदय में साहस हो। इसी प्रकार सिंहासन पर वही व्यक्ति शोभा देता है जिसमें शौर्य हो, बुद्धि हो, क्षमता हो।

बृहद्रथ—मैं समझा नहीं आपका तात्पर्य !

पुण्यमित्र—मैं यह कहने आया हूँ कि प्रजा आपके अत्याचारों से तंग आ गयी है। उठाइये तलवार और मुझसे द्वन्द-युद्ध कीजिये !

बृहद्रथ—(डर कर) द्वन्द-युद्ध... ! ना बाबा ना ! मुझसे नहीं उठेगी तलवार !

पुण्यमित्र—उठे कैसे ? विलास ने आपके शरीर को खोखला कर दिया है। शासन को बागडोर संभालने की शक्ति आप के हाथों में नहीं है। आप जैसे कायरों का जीवन इस धरती के लिये भार है।

बृहद्रथ—(कम्पित स्वर में) आप मुझे मारना चाहते हैं, मेरा सिंहासन छीनना चाहते हैं। (चीख कर) बचाओ... बचाओ।

पुण्यमित्र—(अट्टहास करके) आपको बचाने वाला कोई नहीं है, सिवाय इस तलवार के...

[वृहद्रथ की चीख । पृष्ठ भूमि से.....‘महाराज पुष्यमित्र शुंग की जय’ का घोष । फिर विदिशा का हास्य....]

विदिशा—और इस प्रकार इतिहास की पुनरावृत्ति हुई । ब्राह्मण चाणक्य ने मौर्य-साम्राज्य की स्थापना की थी और ब्राह्मण पुष्यमित्र ने उसका अन्त कर दिया । शुंग काल में मेरा वैभव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया ।

आलोक—मगर शुंग-राजाओं की राजधानी तो पाटलिपुत्र ही थी !

विदिशा—इससे क्या हुआ ? पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को यहाँ का शासक बनाया । कालिदास के नाटक—“माल-कििकाग्निमित्र” का नायक यही राचकुमार अग्निमित्र है ।

आलोक—वही कालिदास जिसने शकुन्तला नाटक लिखा है ?

विदिशा—हाँ, वही कालिदास ! उसने अपने काव्य मेघदूत में भी मेरे वैभव और सौन्दर्य का चित्रण किया है । मेरा ऐश्वर्य और रूप देखना चाहो तो वाण भट्ट की ‘कादम्बरी’ पढ़ो । (निःश्वास छोड़कर) वेत्रवती सरिता में हंसों का कल-गान, प्रातः समय सुन्दर और सुकमार युवतियों का स्नान बड़े-बड़े पर्वतों को अपनी सूँड़ से खिसका देने वाले हाथियों की जल-क्रीड़ा । (हककर) तब वातावरण शस्त्रों की भंकार और शास्त्रों की चर्चा से गूँजा करता था ।

[बोलते-बोलते फेड आउट । पृष्ठभूमि से घोड़ों की टापों का स्वर, रण-वाद्यों की ध्वनि ! ‘कुमार अग्नि मित्र की जय’ का घोष ! ये ध्वनियाँ दूर से पास आती हैं, और फिर दूर जाकर विलीन हो जाती हैं । फिर ‘कुमार वसुमित्र की जय’ का घोष उभरता है ।]

पुष्यमित्र—आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, कुमार अग्निमित्र ! तुमने विदर्भ के दम्भी शासक यज्ञसेन का दंभ चूर कर दिया ।

और कुमार वसुमित्र जैसे पौत्र को पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। उसने जिस शौर्य से यवनों को पराजित करके अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छुड़ाया वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। इसी उपलक्ष में मैं फिर यज्ञ करूँगा। इस बार का यज्ञ यहीं विदिशा में होगा और उसके पुरोहित होंगे पाणिनि के भाष्यकार मुनि पतंजलि !

[पृष्ठभूमि से वैदिक ऋचाओं का स्वर ! शख, घड़ियाल एवं यज्ञ-मन्त्रों की ध्वनियाँ उभरती हैं। ये ध्वनियाँ पास आकर फिर पृष्ठभूमि में जाकर विलीन हो जाती हैं।]

विदिशा—इस प्रकार एक बार फिर वैदिक धर्म का उद्धार हुआ। शुंग वंश के नवें-राजा भागभद्र ने यहाँ अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण कराया। उसी के काल में तक्ष-शिला के यवन राजा “अन्ति-अलकिदस” ने होलियोदोरस को अपना राजदूत बनाकर यहाँ भेजा। यूनानी होते हुये भी वह विष्णु का भक्त था। उसके यहाँ के विष्णु-मन्दिर में गरुणध्वज की स्थापना की।

आलोक—अच्छा, तो क्या यूनानी भी हिन्दू-धर्म मानते थे ?

विदिशा—हाँ ! एक दूसरे यूनानी डिमिस्ट्रियस ने तो एक यज्ञ भी कराया। इससे तुम समझ सकते हो कि वैदिक-धर्म उस समय कितना उन्नत था। और इस नव-जागरण का केन्द्र मैं ही थी। महाभारत की रचना भी इसी काल में हुई। संस्कृत भाषा के साथ साथ चित्र और शिल्पकला भी उन्नति कर रही थी। तुमने साँची का स्तूप देखा है, न ?

आलोक—हाँ ! हम लोग साँची से ही आ रहे हैं।

विदिशा—उस स्तूप के सुन्दर द्वारों का निर्माण करने वाले कारीगर मेरे ही पुत्र थे। (रुक कर) शुंग-वंश का शासन अधिक काल तक नहीं रहा। इस वंश के अंतिम राजा

देवभूति का वध उसके मन्त्री वसुदेव कश्यप ने कर दिया । जिस प्रकार शुंग-राज्य की स्थापना हुयी थी उसी प्रकार उसका अन्त भी हुआ । शुंग-वंश के बाद यहाँ नाग-वंश का प्रभुत्व रहा । वे लोग शिव के भक्त थे और इसीलिये उनके काल में मैं शैव-मत का केन्द्र बन गयो ।

आलोक—तब तो यहाँ शिव जी के मन्दिर भी बने होंगे ?

विदिशा—अनेक शिव-मन्दिरों का यहाँ निर्माण हुआ और उनमें ताड़-स्तम्भों की स्थापना हुयी । स्थान-स्थान पर शिव-वाहन नन्दी की कलापूर्ण मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं । फिर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने नाग राजाओं को पराजित किया और उनकी पराजय से मेरा वैभव और महत्व भी घट गया । लेकिन चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में मेरा भाग्य एक बार फिर चमका । शकों को परास्त करने के लिये उसकी विशाल सेना यहीं एकत्र हुई ।

| बोलते-बोलते फेड आउट । सैनिकों का कोलाहल पृष्ठभूमि से उभरता है । फिर “सम्राट् चन्द्र गुप्त की जय” का घोष ।]

चन्द्रगुप्त—मन्त्रियों, सेनापतियों तथा सामन्तों । आप सभी जानते हैं कि गुप्त-साम्राज्य की दृढ़ता के लिये शकों का हराना कितना आवश्यक है और उन्हें हराने के लिये विदिशा को सामरिक महत्व भी आप जानते हैं । इसीलिये मैंने आप लोगों को यहाँ एकत्र किया है । यहीं से हमारी सेना शत्रु-दल पर विजली की तरह टूटेगी ।

[“सम्राट् चन्द्र गुप्त की जय” का पुनः घोष ।]

विदिशा—चन्द्रगुप्त की यह विजय-यात्रा सफल हुई और इस सफलता से साम्राज्य फला-फूला, व्यापार की उन्नति हुई,

ललित-कलाओं का विकास हुआ। इस सब का फल मुझे यह मिला कि उज्जयिनी गुप्त-साम्राज्य की दूसरी राजधानी बन गयी। मेरा राजनैतिक महत्व कम हो गया।

आलोक—पुरस्कार के बजाय दण्ड मिला आपको।

विदिशा—यही मेरा दुर्भाग्य है। हाँ, उदयगिरि में बहुत सी गुफाओं का निर्माण इसी काल में हुआ, जिनमें अनेक मूर्तियों की स्थापना की गयी।

आलोक—हम लोगों का विचार उदयगिरि की गुफायें देखने का भी है।

विदिशा—अवश्य देखो ! उन्हें देखकर तुम गुप्त काल की कला का अनुमान लगा सकोगे। गुप्त काल के बाद मैं भुला दी गयी और तो और मेरा नाम तक बदल गया।

आलोक—हाँ, दीदी कह रही थीं, अब आपका नाम मिलसा है।

विदिशा—मध्यकाल में मैल स्वामी मन्दिर के कारण मेरे एक भाग का नाम मिलसा पड़ गया। राजपूतों का उत्थान-पतन, यवनों का आगमन, अंध्रेजों का साम्राज्य और फिर स्वतन्त्रता के लिये अहिंसात्मक युद्ध, मैं एक तटस्थ दर्शक की भाँति देखती रही।

आलोक—अब तो हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है।

विदिशा—मालूम है। और इसीलिये मैं चाहती हूँ कि मेरा प्राचीन गौरव मुझे फिर मिले।

आलोक—यह कैसे हो सकता है ?

विदिशा—मेरा वैभव इन्हीं खण्डहरों के नीचे दबा पड़ा है। उसे खोदकर निकालो...(स्वर तीव्र होता है) उसे खोदकर निकालो...उसे खोदकर निकालो !

[स्वर तीव्रतम होकर दूर चला जाता है। पृष्ठभूमि से तीव्र भंकार का स्वर। बच्चों का कोलाहल दूर से पास आता है।]

दीदी—आलोक, कैसे लड़के हो तुम ! (अन्य बच्चों की हँसी) और सब बच्चे घूम-घूम कर पुराने खण्डहर देख रहे हैं और तुम यहाँ बैठे सो रहे हो ।

आलोक—(चौक कर) ओह, क्या मैं सचमुच सो रहा था ? और लड़के खण्डहर देख रहे हैं । कोई बात नहीं, दीदी ! मैंने... मैंने खण्डहरों की आत्मा के दर्शन कर लिये हैं ।

दीदी—(न समझने के ंग से) खण्डहरों की आत्मा...?

आलोक—हाँ दीदी, खण्डहरों की आत्मा...!

[फेड आउट]

सौदा

[समस्यामूलक यथार्थवादी सामाजिक नाटक]

[प्रारम्भिक संगीत के बाद पृष्ठभूमि से बरतनों के रखने-उठाने और नल पर से पानी की धार गिरने की आवाज आती है ।]

आशा—(समीप से घबराये हुये ऊँचे स्वर में) भाभी ! भाभी !!
जल्दी आओ । कम्मो की हालत...

[वाक्य बीच में ही रुक जाता है । पृष्ठभूमि में जोर से बरतन गिरने की ध्वनि आती है । उसके बाद कल्पना की तीव्र पद-चाप समीप आती है ।]

कल्पना—(पास आकर) हाय ! इसके तो हाथ-पैर ऐंठ रहे हैं ।
हे भगवान !!

आशा—जल्दी से जाकर चौराहे वाले डाक्टर को बुला लाओ,
भाभी ! जल्दी करो, आँखें उल्टी जा रही हैं बिचारी की !

कल्पना—(रुढ़ कंठ से) मेरे तो हाथ-पैर फूल रहे हैं, आशा ! वे अभी तक नहीं आये । आठ कब के बज चुके हैं । हाय ! यह क्या हो रहा है मेरी बेटी को ! (सिसकते स्वर में)
कम्मो ! मेरी बेटी !!

आशा—यह क्या कर रही हो, भाभी ? जल्दी जाओ न डाक्टर के पास !

कल्पना—डाक्टर को फीस चाहिये । हमारे पास तो दवा के लिये भी पैसे नहीं हैं ।

आशा—जाओ तो, भाभी ! शायद ऐसी हालत सुनकर आ जाये ! ओह ! जीभ भी ऐंठने लगी है ।

कल्पना—जाती हूँ, आशा, अभी जाती हूँ ! मगर मैं जानती हूँ, वह आयेगा नहीं । और उसमें जरा भी दया-ममता होती तो (गला रुंध आता है) उल्लास क्यों जाता, साधना क्यों जाती,

हर्ष क्यों जाता !

आशा—(आर्द्र स्वर में) ऐसा न कहो, भाभी ! हमें जैसे भी हो कामना को बचाना है । जीवन भैया आ गये होते तो...

कल्पना—वे कहीं पड़ा रहे होंगे । उन्हें क्या मालूम था कि तबियत सँभल कर फिर बिगड़ जायेगी ।

आशा—अब जाओ भो, भाभी ! कम्मो की जान निकल रही है, और तुम.....

कल्पना—(बीच में ही) जाती हूँ, अमो जाती हूँ ! (दूर जाता हुआ स्वर) मगर वह आयेगा नहीं । मैं जानती हूँ ।

[आशा की चीख और फिर सिसकने की आवाज़ ।]

कल्पना—(दूर से पास आता हुआ स्वर) क्या हुआ, आशा ?

आशा—(सिसकती हुई) भाभी ! कम्मो चल बसी ! अब जरूरत नहीं किसी डाक्टर की ।

[रुदन और सिसकियों की आवाज़ आती रहती है ।]

जीवन—(दूर से पास आता हुआ स्वर) यह क्या कोहराम मचा रक्खा है घर में ? (पास आकर) क्या कामना भी नहीं रहो ?

आशा—भैया ।

जीवन—तो इसमें रोने-धोने की क्या बात है ? जो जन्म लेता है, वह मरता भी है ।

कल्पना—(तीखे स्वर में) बैरागियों जैसी इन बातों से क्यों जले पर नमक छिड़क रहे हो ?

जीवन—नमक बिप नहीं है, पगली ! दाल-साग के अभाव में वही हमारा साथ देता है ।

[आशा और कल्पना की सिसकियों की आवाज़ ।]

जीवन—यह रोने का नहीं, हँसने का अवसर है । कामना भूख, अभाव और रोगों से मुक्त हो गयी है । (हँसता है)

कल्पना—सुन रही हो इनकी बातें, आशा ? बेटी की लाश पड़ी है और इन्हें हँसने की सूझी है ।

जीवन—(रूठे-स्वर में) और तुम लोग रोकर क्या कर लोगी ? जीवन की प्यास आँसुओं से नहीं बुझती । जीवित रहने के लिये दूध चाहिये, फल चाहिये, घी चाहिये, मक्खन चाहिये । इनमें से कोई भी वस्तु दे सके हम अपनी कामना को ? फिर वह क्यों जीवित रहती ? हम भूखे-प्यासे और नंगे रह सकते हैं, बच्चे नहीं रह सकते । हम अपनी इच्छाओं का दमन कर सकते हैं, बच्चे नहीं कर सकते । उन्हें तो मिठाई भी चाहिये, आईसक्रीम भी चाहिये, खेल-खिलौने भी चाहिये ।

आशा—भैया ! क्या हो गया है आपको आज ?

जीवन—(अपनी ही धुन में) उल्लास भी हमसे इसीलिये रूठा, साधना भी इसीलिये रूठी, हर्ष भी इसीलिये रूठा और अब कामना भी इसीलिए रूठकर चली गयी है । ठाक भी है । जब हमारे पास मनाने का साधन नहीं है तब.....

कल्पना—(बीच में ही) भगवान के लिए अब चुप भी रहो ।

जीवन—अगर भगवान है तो निश्चय ही हमारे बच्चे उसी के पास गये हैं । कदाचित्त यह पूछने के लिये कि उसने निर्धन माँ-बाप के यहाँ जन्म क्यों दिया । कल्पना, भगवान ने उनके सारे अभाव दूर कर दिये होंगे । वहाँ उन्हें स्वर्ग के सुख प्राप्त होंगे । यह क्या प्रसन्न होने की बात नहीं है ? कभी-कभी मृत्यु जीवन से अधिक सुखद होती है । इसीलिये कहता हूँ कि हँसो, जी खोलकर हँसो । (हँसता है)

[एक क्षण तक जीवन की हँसी और आशा तथा कल्पना की मिमिकियों का सम्मिलित स्वर गूँजता रहता है ।

जीवन—यदि कोई वस्त्र हो तो दो, नहीं तो कहो ऐसे ही बहा
आऊँ इसे गंगा में !

आशा—मैं देती हूँ भैया ! (पदचाप दूर जाती है)

कल्पना—तुम पत्थर क्यों होते जा रहे हो ? जरा भी ममता नहीं
रही है तुम्हारे दिल में ?

जीवन—कल्पना ! आघात सहते-सहते मनुष्य इतना अभ्यस्त हो
जाता है कि उसकी संवेदना शक्ति नष्ट हो जाती है। मेरे
लिये अब सुख और दुःख में कोई अन्तर नहीं। मैं मशीन
बन गया हूँ, मशीन।

[कल्पना की सिसकियाँ]

जीवन—रोओ मत, कल्पना ! इस मशीन के अन्दर भी एक कोमल
हृदय है जिसे मैं भूलना चाहता हूँ। आँसू देखकर...नहीं,
नहीं ! आँसू पोंछ डालो कल्पना !

आशा—(पास आकर) यह लीजिये कपड़ा !

जीवन—यह...यह कोरा वस्त्र कहाँ से आया ?

आशा—एक पेटीकोट पड़ा था कोरा। उसको काट कर ले
आयी हूँ।

जीवन—आशा ! तुमने यह क्या किया (निःश्वास छोड़कर) निर्धन
भाई की बहिन होना भी पाप है।

आशा—(हृद्ध कंठ से) ! आपको सौगन्ध है मेरे सिर की अगर
फिर कभी ऐसी बात कही !

जीवन—(अपेक्षाकृत भीगे स्वर में) नहीं कहूँगा, अब कुछ भी नहीं
कहूँगा। जैसे तब कुछ नहीं कहा था जब तुमने पढ़ाई में मन
न लगने का बहाना करके स्कूल छोड़ दिया था। (भीगे स्वर
में) लाओ वस्त्र, आशा ! आ, बेटो कम्मो ! अन्तिम बार
तेरा अभागा पिता तुझे अपनी गोद में तो ले ले ! (दबी हुई
सिमकी)

[आशा और कल्पना की सिसकियों के साथ ही फेड़आऊट]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठभूमि से स्कूल की घन्टी की आवाज । साथ ही विद्यार्थियों की चहल-पहल ।]

जीवन—क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

प्रिन्सिपल—आइये मि० जीवन ! अरे, उधर नहीं, इस कुर्सी पर बैठिये ।

जीवन—आपने मुझे स्मरण किया था ?

प्रिन्सिपल—इस्तहान पास आ रहा है । इसीलिये फिक्र है । आप तो जानते ही है कि प्रिन्सिपल होना भी एक “सिन” है ।

जीवन—(धोमे स्वर में) जी...

प्रिन्सिपल—इस साल के नतीजे पर ही हमारा फ्यूचर डिपेन्ड करता है, मि० जीवन । मैनेजिंग कमेटी चाहती है कि जिस तरह भी हो, नतीजा सेन्ट-परसेन्ट रहना चाहिये । आप हिन्दी और सिविल्स के एक्स्ट्रा क्लास ले रहे हैं न ?

जीवन—जी, हाँ !

प्रिन्सिपल—शाबाश ! (रुक कर) मि० वर्मा ने एक हफ्ते की छुट्टी ली है । लड़की की शादी है । अगर आप अँग्रेजी का क्लास.....

जीवन—किन्तु.....

प्रिन्सिपल—किन्तु क्या ? मैं यह तो मान नहीं सकता कि आप पढ़ा नहीं सकते । आप जैसा विलियेन्ट स्कालर...

जीवन—(बीच ही में) जो आज्ञा ! कल से अँग्रेजी भी पढ़ाऊँगा ।

प्रिन्सिपल—ठीक है । अब आप जा सकते हैं ! और देखिये, मैंने आपकी सैलरी बढ़ाने के लिये मैनेजिंग कमेटी को रिक्मेन्ड कर दिया है ।

जीवन—धन्यवाद ! (कुछ रुक कर) यदि पिछला वेतन...।

प्रिन्सिपल—अभी तो भगड़ा ही चल रहा है मैनेजमेंट में । उम्मीद है कि गर्मी की छुट्टियों के बाद पूरा हिसाब साफ हो जायेगा ।

जीवन—तब तक तो मेरा परिवार भूखों मर जायेगा, प्रिन्सिपल साहब ! तोन महीने हो गये हैं और एक पैसा भी नहीं मिला है ।

प्रिन्सिपल—मजबूरी है मि० जीवन ! आई एम हेल्पलेस ।

जीवन—यह अन्याय है ! अस्सी रुपये देकर हस्ताक्षर सवा सौ पर कराये जाते हैं, और फिर भी वेतन समय पर नहीं मिलता ।

प्रिन्सिपल—(कठोर स्वर में) मि० जीवन ! अगर आपको स्कूल से कोई शिकायत है तो आप छोड़ सकते हैं । मगर यह न भूलिये कि दूसरी जगह पचास रुपये भी नहीं मिलेंगे । आज कल अनट्रेण्ड टीचर्स को रखता ही कौन है, हम आपको रखे हुये हैं, यही क्या कम है ?

जीवन—(धीमे स्वर में) मैं...मैं...मुझे वेतन की कमी पर कोई आपत्ति नहीं । चाहे सत्तर ही मिलें पर हर महीने मिलें तो ! (आर्द्र स्वर में) बाल-बच्चे तो भूखे नहीं रह सकते, प्रिन्सिपल साहब ।

प्रिन्सिपल—मुझे सिम्पेथी है आप से । एक आपको ही क्या, किसी को भी पे नहीं मिली है । मेरी फैमिली तो आप से काफी बड़ी है ! आखिर मैं भी तो किसी न किसी तरह काम चला ही रहा हूँ । (हँसकर) और इस साल तो आप इक्जामिनर भी हो गये हैं । दो-ढाई सौ रुपये बोर्ड से भी मिल ही जायेंगे !

जीवन—किन्तु वे तो कहीं सितम्बर-अक्टूबर में जाकर मिलेंगे । तब तक...

प्रिन्सिपल—(बीच में ही) मैं कोशिश करूँगा कि छुट्टियों से पहले ही पे मिल जाये। अब तो कल से आप अँग्रेजी...

जीवन—जी हाँ ! यदि और कोई अवकाश लेना चाहे तो उसे भी दे दें। मैं इतिहास, भूगोल, गणित सब कुछ पढ़ा लूँगा।

प्रिन्सिपल—हियर यू आर ! देस लायक एक गुड टीचर !
आखिर हमी लोग तो नेशन बिल्डर हैं।

जीवन—(धीमे स्वर में) हाँ, हम राष्ट्र निर्माता हैं ! देश के भागी नागरिकों के शिक्षक हैं हम, हमारे ही कन्धों पर देश के नव-निर्माण का भार है।

प्रिन्सिपल—बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप। दिस इज गार्स्पेल ट्रूथ।

जीवन—अब रही भूखे और नंगे रहने की बात, सो उसका क्या है प्राचीन काल में भी तो आचार्य तपस्वी ही होते थे। फिर हम भूखे-प्यासे और नंगे रहकर राष्ट्र का निर्माण क्यों नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं। (हँसता है) हम राष्ट्र के निर्माता हैं, राष्ट्र निर्माता...और वह भी भूखे ! (हँसता है)

[प्रिन्सिपल और जीवन की हंसी के मध्य फेड आऊट]

अन्तराल के बाद

कल्पना—(चिन्तित स्वर में) क्यों, आज तबियत ठीक नहीं है क्या ?

जीवन ठीक तो है।

कल्पना—फिर उदास क्यों हो ? ठीक से खा भी नहीं रहे हो ?
(ऊँचे स्वर में) आशा ! रोटी दे जाओ !

आशा—(दूर से) अभी लायी भाभी !

जीवन—(ऊँचे और भारी स्वर में) अब रहने दो, आशा ! मैं नहीं लूँगा।

कल्पना—क्या होता जा रहा है तुम्हें ? सवेरे भी ठोक से नहीं खाया था । दिन भर के बाद अब भी...!

जीवन—(रुखी हँसी हँसकर) भोजन जीवन के लिये है, जीवन भोजन के लिये नहीं ! हाथ धुला दो ।

कल्पना—मैं जानती हूँ क्यों नहीं खाते हो तुम । मगर आज तो घर में काफी आटा है ।

जीवन—(चौक कर) काफी आटा है ! (तेज स्वर में) कहाँ से आया
[क्षणिक निस्तब्धता]

जीवन—बोलती क्यों नहीं ? मैं पूछता हूँ, आटा कहाँ से आया ?

कल्पना—तिवारी जी के यहाँ से ।

जीवन—(आवेश पूर्ण स्वर में) भीख माँगने से पहले तुम्हारे हाथ कट कर गिर नहीं गये ? यदि मुझे पहले से यह ज्ञात होता तो लात मार देता थाली को ।

[थाली खनखनाने की तेज आवाज़]

कल्पना—(रुद्ध कण्ठ से) मैं माँगकर नहीं लायी । मैं...मैं...

जीवन—(उसी स्वर में) माँग कर नहीं लायीं । माँग कर नहीं लायीं तो कैसे लायीं ?

आशा—(पास आकर धीमे स्वर में) भैया !

जीवन—(कठोर स्वर में) आशा ! तुमने भी मुझे नहीं बताया कि यह आटा दान का है ।

आशा—भैया ! दान के दानों से पेट भरने से अच्छा हम भूखों मर जाना समझती हैं । जब वनिये ने लाख विनती कराने के बाद भी उधार नहीं दिया तब...

जीवन—(बीच में ही) तब...तब क्या किया तुम लोगों ने ?

आशा—मेहनत ! तिवारी जी के यहाँ अगले महीने शादी है । हमने वहाँ जाकर काम किया । भाभी ने मसाला कूटा, मैंने

दालें धोयीं, और...और अपनी मेहनत के बदले में आटा ले लिया ।

जीवन—(भारी कण्ठ से) ओह !

आशा—भैया ! मेहनत करके पेट भरना पाप नहीं है । आप ही तो कहते हैं कि श्रम पवित्र है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक !

जीवन—(भारी स्वर में) जाओ आशा, तुम खाना खाओ जाकर !

[क्षणिक मौन]

जीवन—मुझे क्षमा कर दो, कल्पना !

कल्पना—यह क्या कह रहे हो तुम ? माफी तो मुझे माँगनी चाहिये ।

जीवन—(निःश्वास छोड़कर) कितना अभंगा हूँ मैं ! मेरे होते हुये तुम लोगों को पेट भरने के लिये काम करना पड़ा । (स्वर भारी और आर्द्र हो जाता है) मैं पुरुष होकर भी अपंग हूँ और...और तुम.....

कल्पना—छोड़ो भी इन बातों को ।

जीवन—पेट भरने के लिये अब तुम लोगों को काम नहीं करना पड़ेगा, कल्पना ! जैसे भी होगा कल मैं कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य कर लूँगा ।

कल्पना—(धीमे स्वर में) स्कूल से अभी...

जीवन—(बीच में ही) बेतन मिलने की कोई आशा नहीं । ट्यूशन वालों से कुछ पैसों का प्रबन्ध करूँगा ।

कल्पना—आज तिवारी जी के यहाँ जव गयी तब...(बोलते-बोलते रुक जाती है)

जीवन—कहो, रुक क्यों गयीं ?

कल्पना—कुछ नहीं ! हाँ, इलाहाबाद से अभी तक कोई जवाब नहीं आया । मुझे तो यह देरी अच्छी नहीं लगती ।

जीवन—आजायेगा । आशा पसन्द तो आ ही गयी है उन लोगों को ।

कल्पना—पसन्द तो आ गयी है, लेकिन अभी तक जवाब क्यों नहीं दिया ? कहीं रुपये-पैसे के लोभ...

जीवन—ऐसा न कहो, कल्पना । किसी काम में फँस गये होंगे, इसीलिये उत्तर नहीं दे पाये । मैं कल एक कार्ड डाल दूँगा ।

कल्पना—अब आशा का व्याह जल्द से जल्द हो जाना चाहिये । काफी सयानी हो गयी है; मोहल्ले-टोले वाले ऊँगलियाँ उठाने लगे हैं ।

जीवन—(कुद्र स्वर में) मोहल्ले-टोले वाले अन्धे हैं क्या ? हूँ, उँगलियाँ उठाने चले हैं ! जो मेरी आशा पर उँगली उठायेगा उसका हाथ तोड़ दूँगा ।

कल्पना—धीरे से बोलो न ! आशा सुनेगी तो क्या सोचेगी ! (ममभाने के ढग में) क्रोध करने से क्या होगा ? सयानी लड़की तो भार होती ही है ।

जीवन—वर्षों से तो चेष्टा कर रहा हूँ उसके हाथ पीले करने की । अपने बस की बात तो है नहीं कुछ । और फिर आँख मूँद-कर उसे कुँये में तो ढकेला जा नहीं सकता ।

कल्पना—भगवान करे इलाहाबाद वालों के यहाँ सब कुछ तय हो जाये ।

जीवन—ऐसा ही होगा, कल्पना, ऐसा ही होगा । आशा के भाग्य से बहुत सज्जन लोग मिल गये हैं ये ।

[आशा की खामी का स्वर पाम आता है।]

कल्पना—खाना खा लिया, आशा?

आशा—हाँ, भाभी ! तुम भी खालो जाकर ।

कल्पना—जाती हूँ ।

[क्षणिक मौन]

आशा—भैया ! भाभी का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है ।

किसी डाक्टर.....

जीवन—(हँसकर) डाक्टर क्या करेगा इसमें, पगली ! हम सब एक रोग से पीड़ित हैं । जानती हो, क्या है वह रोग ? भूख ! डाक्टर के पास इस रोग की औषधि है कुछ ?

आशा—जब-तब बुखार रहना, खाँसी आना, दिन पर दिन पीलो होतो जाना, भूख के ही लक्षण हैं क्या ? भैया ! इसे हँसी में न टालिये । किसी अच्छे डाक्टर को दिखाना बहुत जरूरी है ।

जीवन—तुम अच्छे डाक्टर को कहती हो, आशा, और मैं कहता हूँ कि कोई बुरा डाक्टर भी बिना पैसे के नहीं देखेगा ।

आशा—मैंने कल कहा था भाभी से कि न हो तो सरकारी अस्पताल में ही दिखा आओ, मगर वे मेरी सुनती ही नहीं । कहती हैं, सब अपने आप ही ठीक हो जायेगा । (रुद्ध कंठ में) आप ही समझाइये उन्हें भैया, आप ही समझाइये । अगर कहीं उन्हें कुछ हो गया तो.....

जीवन—कल्पना को कुछ नहीं होगा, आशा, विश्वास रखो ! मैं अभी उससे कहूँगा । तुम भी साथ चली जाना ।

[पृष्ठभूमि से कल्पना की खाँसी का स्वर कुछ देर तक आता रहता है ।]

आशा—सुना आपने, भैया ! यह खाँसी मामूली नहीं है । सामने वाली चम्पा भी ऐसे ही खाँसती थी ।

जीवन—(वाकुक स्वर में) आशा ! उससे तुम कुछ न कहना अभी । कल अस्पताल लेकर चली जाना । समझीं ! (धीमे स्वर में जैसे

स्वगत कथन करता हो) कल्पना को कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं होगा मेरी कल्पना को। जीवन का रक्त उसे सींचेगा।

आशा—(घबराहट से) भैया !

जीवन—हाँ आशा ! जीवन का रक्त उसे सींचेगा। तुम उसे अस्पताल ले जाना कल !

आशा—जरूर ले जाऊँगी, भैया ! (सहसा जैसे भूली बात याद आ गयी हो) हाँ, भैया। भाभी ने मुनोम जी के बारे में बताया कुछ आपको ?

जीवन—नहीं तो। क्या फिर आये थे ?

आशा—हाँ। दो-तीन दिन बाद फिर आने को कह गये हैं। कह रहे थे, अगर पिछले किराये की पार्इ-पार्इ न चुकाई गयी तो सामान कुर्क करा लेंगे।

जीवन—कुर्क होने के लिये हैं ही क्या अपने पास ? आने दो, कुर्की भी आने दो।

[पृष्ठ भूमि में कल्पना की खाँसी का स्वर आता है। कुछ देर तक वह निरन्तर खाँसती रहती है।]

आशा—फिर खाँसी उठी है। मैं जा रही हूँ भाभी के पास। अब सो जाइये भैया। सुबह स्कूल जाना है आपको।

[पदचाप का स्वर दूर जाता है]

जीवन—(स्वगत) निद्रा भी तो रुठ गयी है मुझसे। ओह ! क्या इसी का नाम जीवन है ? जीवन...जीवन.. (हँसता है) न जाने क्या समझ कर मेरा नाम रक्खा गया है, जीवन...हा-हा-हा जीवन...।

[जीवन की हँसी का स्वर तीव्र होकर फिर धीमा होकर विलीन हो जाता है।]

अन्तराल के बाद

कल्पना—(खाँसते हुये) शाम होने को आयी और अभी तक चूल्हा नहीं जला । (ऊँचे स्वर में) आशा ! आशा !!

आशा—(दूर से) आयी, भाभी ! (पगल आकर) क्या है ? अरे ! तुम तो उठकर बैठ गयी हो ! लेटी रहो, भाभी !

कल्पना—तुमने तो मुझे रोगी बना रखवा है । खाँसी-बुखार तो चलता ही रहता है । तुम्हीं तो कह रही थीं कि डाक्टरनी ने मामूली खाँसी बतायी है ।

आशा—वह तो ठीक है, भाभी, मगर रोग चाहे छोटा हो या बड़ा, आराम तो करना ही चाहिये । फिर मेरे रहते तुम्हें क्या जरूरत पड़ी है काम करने की ?

कल्पना—(हँसकर) अभी ऐसे कह रही हो नन्दरानी, मगर ससुराल जाकर मेरी बुराई करतो फिरोगी कि मेरी भाभी तो मुझे दासी बनाकर रखती थीं । (हँसती है)

आशा—(सलज्ज स्वर में) जाओ । तुम बड़ी वैसो हो, भाभी ! ऐसी बातें करोगी तो मैं नहीं बोलूँगी तुमसे ।

कल्पना—रूठ गयीं ? मैं तो हँसी कर रही थी, पगली ! (गम्भीर स्वर में) आशा ! हमारे घर और जीवन को हँसी का यही निर्मल श्रोत ही तो हरा-भरा रखे है । अगर यह सूख गया तो...तो फिर बाकी क्या रह जायेगा ?

आशा—मैं भी तो हँसी ही कर रही थी, भाभी । अच्छा, अब लेट जाओ । मेरी अच्छी भाभी ! मेरा कहना मान लो । (कृत्रिम गम्भीरता से) मैं हमेशा थोड़े ही रहूँगी यहाँ ! जब तक हूँ तब तक तो सेवा कर लेने दो ।

कल्पना—(मुक्त हँसी के बाद) बहुत चंचल हो गयी हो तुम ! पर

लगने लगे हैं मेरी आशा रानी के । घबराओ नहीं, बहुत जल्द ही.....

[कल्पना का वाक्य अपूर्ण रह जाता है । द्वार पर कोई दस्तक देता है ।]

आशा—(ऊँचे स्वर में) कौन है ?

कल्पना—देख लो जाकर !

आशा—(दूर जाता हुआ स्वर) शायद कोई वच्चा हो । (एक क्षण बाद दूर से पास आता हुआ स्वर) डाकिया था । चिट्ठी आयी है, भाभी ।

कल्पना—(प्रसन्न स्वर में) चिट्ठी है । जरूर इलाहाबाद की होगी । लाओ, देखूँ तो । अरे ! यह तो अंग्रेजी में है । लो, तुम्हीं पढ़कर सुनाओ ।

आशा—(लज्जित स्वर में) इलाहाबाद की ही है ।

कल्पना—तब तो मुँह मीठा कराओ, बीबी रानी ! मुँह माँगी मुराद पूरी हुई है । जरा पढ़ो तो !

आशा—मैं नहीं पढ़ती ।

कल्पना—आहाहा । मन तो यही कर रहा होगा कि चिट्ठी को घोलकर पी जाऊँ ! (हँस कर) सुनाओ भी ! मैं उनसे थोड़े ही कहूँगी कि तुमने चिट्ठी पढ़ ली है ।

आशा—मुझे शर्म लगती है, भाभी ।

कल्पना—इसमें शर्म काहे की । सुनाओ भी ।

आशा—नहीं मानती हो तो सुनो । लिखा है—माई डियर जोवन वायू ! आन श्रकाउन्ट आफ सम...

कल्पना—यह क्या गिट-पिट करने लगीं ? अरे । अगर मैं अंग्रेजी जानती होता तो खुद ही न पढ़ लेती । हिन्दी करके पढ़ो, रानी, हिन्दी करके !

आशा—लिखा है—कुछ जरूरी कामों में फँस जाने से जल्दी उत्तर नहीं दे सका । लड़की मुझे बहुत पसन्द है । (हक कर) अब आगे नहीं पढ़ती मैं ।

कल्पना—कैसी पागल हो तुम ! पढ़ो आगे ।

आशा—(पढ़ती हुई) हम सब की यही इच्छा है कि सम्बन्ध यहीं हो । और लोग तो बीस-बीस हजार तक देने को तैयार हैं पर हम रिश्ता आपके यहाँ ही करना चाहते हैं ।

कल्पना—बधाई, आशा रानी, बधाई ! और कुछ लिखा है ।

आशा—हाँ ! लिखा है—हमें रुपये-पैसे का लोभ नहीं है ! फिर भी कुछ न कुछ तो चाहिये ही । अगर आप... (पढ़ना बन्द कर देती है ।)

कल्पना—पढ़ो, रुक क्यों गयीं ? क्या लिखा है आगे ?

आशा—(सिसकी मिश्रित स्वर में) भाभी !

कल्पना—(आशंका से) आशा ! क्या...क्या लिखा है ! बोलती क्यों नहीं ?

आशा—(रूंधे कण्ठ से) पाँच हजार चाहिये उन्हें, भाभी, पाँच हजार ! हैं तुम्हारे पास इतने रुपये देने के लिये ?

[आशा का अन्तिम वाक्य सिसकियों में घुटा सा दूर जाता है।]

कल्पना—(स्वगत) हे भगवान ! क्या होने वाला है ? क्या आशा उमर भर क्वारि रहेगी ?

जीवन—(प्रसन्न स्वर दूर से पास आता हुआ) आशा ! कल्पना !!

अरे, कहाँ हो तुम लोग ? (पास आकर) अरे । यहाँ पड़ी हो तुम ? लेटी रहो । यह देखो, आज तीस रुपये मिले हैं । दस-दस के तीन नोट, एक दम नये और करारे । आशा कहाँ है अरे, तुम इस तरह मेरी ओर क्यों देख रही हो ? यह पत्र किसका है ?

कल्पना—(उदास और धीमे स्वर में) इलाहाबाद से आया है ।

जीवन—(प्रसन्न स्वर में) इलाहाबाद से आया है। मैं कहता था न कि एक-दो दिन में उत्तर आजायेगा। लाओ तो। देखूँ क्या लिखा है ?

कल्पना—क्या करोगे पढ़कर ? पाँच हजार रुपये चाहते हैं।

जीवन—(दृष्टे स्वर में) पाँच हजार रुपये ? क्या...क्या...कह रही हो तुम ? पत्र तो लाओ। (एक क्षण बाद) ठीक कहती हो तुम कल्पना ! ये लोग भी लड़के को बेचने वाले ही निकले ! (दुखी स्वर में) पाँच हजार ! पाँच हजार !! मेरा तो सिर चकरा रहा है।

कल्पना—न हो तो कोई और लड़का देखो !

जीवन—(निश्वास छोड़कर) कल्पना ! लगता है, आज का मनुष्य पैसे को ही परमेश्वर मानने लगा है।

कल्पना—तुम्हीं देखो ! मैं तो शुरू से ही कहती आयी हूँ कि आज की दुनिया में पैसा ही सब कुछ है।

जीवन—ठीक कहती थीं तुम। आँखें खुल रही हैं मेरी भी ! पर्दा हट रहा है सामने से। कल्पना ! अँधेरा दूर हो रहा है और प्रकाश की उज्ज्वल किरणों से मेरा पथ आलोकित कर रही हैं। (भारी स्वर में) पैसा.. पैसा... इसी पैसे का पिशाच चार-चार बच्चों को खा गया; वही अब आशा के सुख को छीनना चाहता है, तुम्हें घुला-घुला कर...। नहीं, अब ऐसा नहीं होगा, कल्पना, अब ऐसा नहीं होगा।

कल्पना—अच्छा, अब हाथ-मुँह धो लो। मैं देखती हूँ जाकर, आशा ने अभी खाना बनाया या नहीं।

जीवन—तुम लेटी रहो। मैं ही.....

कल्पना—(हँसकर) जब तक हाथ पैरों में जान है तब तक मुझसे तो नहीं लेटा जाता मरीजों की तरह। मैं अभी आती हूँ देखकर।

[कल्पना की पद-चाप दूर जाती है]

जीवन—(ऊँचे स्वर में) आशा ! इधर आना जरा ।

आशा—(दूर से) आयी, भैया । (पास आकर धीमे स्वर में)
क्या है ?

जीवन—अस्पताल गयी थीं ?

आशा—हाँ ।

जीवन—क्या बताया ?

आशा—वही जिसका डर था ।

जीवन—(घबरा कर) क्या क्षय...

आशा—हाँ भैया । मगर चिन्ता की कोई बात नहीं है । अभी शुरू-
आत ही है । दवा दी है पीने की । कहा है, दूध-घी-फल
खुब दिये जायें और...

जीवन—और...और क्या कहा है ?

आशा—(धीमे स्वर में) भैया भाभी को पहाड़ पर ले जाने की
जरूरत है । कानपुर की इस भयंकर गर्मी और धुयेँ और
कोयले से भरी हवा से जितनी जल्दी उन्हें छुटकारा मिले
उतना ही अच्छा है ।

जीवन—(चिन्तित स्वर में) पहाड़ पर ? आशा ! इसके लिये ती
हजारों रुपये चाहियें ।

आशा—(रुद्ध कंठ से) भैया ! अगर... अगर ऐसा न हुआ तो
भाभी...

जीवन— आशा ! मैं उसे मरने नहीं दूँगा । मैं मौत से लड़ूँगा ।
जाओ...जाओ तुम । कल्पना से कुछ न कहना..... ।

[आशा की पद-चाप दूर जाती है ।]

जीवन—(स्वगत) पैसा । आशा के ब्याह के लिये पैसा चाहिये,

कल्पना के लिये पैसा चाहिये । पैसे के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं, कोई मूल्य नहीं ।

[बोलते-बोलते फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठभूमि में कल्पना की खाँसी का स्वर । फिर द्वार खटखटाने की आवाज ।]

कल्पना—(दूर से) कौन है ?

मुनीम जी—(दूर से) यानी कि मैं हूँ मुनीम जी । (हकलाते हुए)
मा...मा...मास्टर जी नहीं हैं क्या ?

[द्वार खोलने की आवाज]

कल्पना—(दूर से पास आता हुआ स्वर) वे तो नहीं आये हैं अभी ।
(पास आकर) आइये बैठिये ।

मुनीम जी—यानी कि बैठूँ क्या ? तु...तु...तुम्हारे यहाँ तो टूटे स्टूल के सिवाय और...और और कुछ है ही नहीं बैठने के लिये ।

कल्पना—हम गरीब आदमी हैं । गद्देदार कोच कहाँ से लायें ?

मुनीम जी—(हंस कर) यानी कि वा...बा...वातें करना तो तुम भी खूब जान गयी हो मा...मा... मास्टरजी जी । यानी कि अब यह व...व...व...बताइये कि किराये का प्रबन्ध हुआ या नहीं ?

कल्पना—(धामे स्वर में) अभी कहाँ हुआ है, मुनीम जी ! कुछ दिन और ठहर जाइये । (खाँसती है)

मुनीम जी—यानी कि तु...तु...तुम्हारी तो तबियत खराब मालूम देती है । सूख कर काँ...काँ...काँटा हो गयी हो ।

कल्पना—रोग-धोग तो लगे ही रहते हैं शरीर के साथ । मुनीम, जी

क्या आप दो-तीन महोने के लिये और नहीं समझा सकते दुबे जी को ?

मुनीम जी—यानी कि स...स...समाई की भी हद होती है । कब तक कि...कि... किराया नहीं लेंगे । यानी कि आज हि... हि...हिंसाव साफ हो जाना चाहिये, नहीं तो फिर जो कुछ हो...उ...उ...उसके लिए मुझे दोष न देना । यानी कि आ... आ...आशा नहीं दिखाई देतो ?

कल्पना—दवा लेने गया है मेरे लिये । आती ही होगी ।

मुनीम जी—यानी कि कहां ...ल...ल...लड़का-बड़का तय किया ? अब तो काफी स..स..सयानी हो गयी है ।

कल्पना—क्या करें मुनीम जी ? गरीबों की सब तरह से आफत है ! कई लड़के देखे मगर हर एक मुँह बाये बैठा है । अब आप ही बतायें, मुनीम जी, हम हजारों रुपये कहाँ से लायें ?

मुनीम जी—यानी कि यह अ...अ...अजीब बात है आशा जैसी सु...सु...सुन्दर और सु...सु...सुशील लड़की के लिये लड़कों की क्या कमी ?

कल्पना—आजकल लड़की कौन देखता है ? सभी पैसा देखते हैं, पैसा ।

मुनीम जी—यानी कि ऐसी बात तो नहीं है । तु...तु...तुमने तलाश ही नहीं किया होगा । कहो तो मैं—ल...ल...लड़का बताऊँ ।

कल्पना—(प्रतन्न होकर) नेकी और पूछ-पूछ ! बताइये मुनीम जी, आप की नजर में है कोई लड़का ?

जीवन—(दूर से पास आता हुआ स्वर) कल्पना ! कल्पना ! ! (पास आकर) अरे ! मुनीम जी ! किराये के लिये आये हैं आप ? अभी कुछ दिन और ठहरना पड़ेगा आपको । यह देखिये कापियों का बण्डल आगया है । सितम्बर-अक्टूबर में दो-ढ़ाई

सौ रुपया मिलेगा बोर्ड से ! तभी पाई-पाई चुका दूँगा ।
मुनीम जी—यानी की यह खूब रही । क्या खे...खे... खैरातखाना
खोल रक्खा है दुबे जी ने ?

जीवन—(कठोर स्वर में) खैरात कौन माँगता है ? तीन महीनों से
मेरा वेतन रुका हुआ है इसीलिये किराया नहीं दे सका ।
आप कह दीजियेगा दुबे जी से जाकर कि अभी पैसा नहीं
है । यदि रुक नहीं सकते तो जो जी में आये सो करें ।

कल्पना—तुम तो बिगड़ने लगे । (धीमे स्वर में) मुनीम जी । हमारी
हालत आप से छिरी तो है नहीं । दया करके दुबे जी को
समझा दीजियेगा ।

जीवन—समझते हैं कि हम किराया लेकर भाग जायेंगे ।

कल्पना—तुम फिर बीच में बोलने लगे ! मुनीम जी भी बाल-बच्चों
वाले हैं । वे हम पर जरूर दया करेंगे । क्यों मुनीम जी, ठीक
है न ?

जीवन—(व्यग से) दया की भीख माँगती भी हो तो उनसे जिनके
पास मनुष्यता के नाम पर शून्य है !

मुनीमजी—यानी कि आप मेरी इ...इ...इन्सल्ट कर रहे हैं, मास्टरजी
यानी कि मैं अब यहाँ एक मि... मि...मिनट भी नहीं ठ...
ठ...ठहर सकता ?

कल्पना—आप तो नाराज हो गये, मुनीम जी । बैठिये न !
इनकी तो आदत ही ऐसी हैं । हाँ, आप लड़का बता रहे थे ।
कौन सा लड़का है आपकी नजर में ?

जीवन—लड़का ?

कल्पना—हाँ ! मुनीम जी कह रहे थे कि आशा के लिये एक ऐसा
लड़का है इनकी नजर में जो दान-दहेज नहीं चाहता । है
न, मुनीम जी ?

मुनीम जी—यानी कि है तो, म...म...मगर मेरी बात कोई सुने भी तो ।

जीवन—(हर्षित होकर) तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया, कल्पना ।
वैठ जाइये, मुनीम जी ! क्रोध में जो अपशब्द कहे हैं उसके लिए क्षमा चाहता हूँ ।

मुनीम जी—यानी कि यह भी अ...अ...अजीब मजाक है । पहले तो गा...गा...गाली दे और फिर कहे मा...मा...माफ करो ।

कल्पना—अब क्रोध को थूक दीजिये मुनीम जी । हमारी नैया को आप ही पार लगा सकते हैं ।

जीवन—कल्पना ! मुनीम जी को शर्वत-अर्बत पिलाया या नहीं ?
गला सूख रहा होगा विचारों का ।

मुनीम जी—यानी कि ..मु...मु...मुझे नहीं पीना है श...श
...शर्वत-अर्बत ।

जीवन—(इंस कर) कोई बात नहीं । (मीठे स्वर में) अच्छा, बताइये कौन लड़का है आपकी दृष्टि में ? क्या कानपुर में ही है ?

मुनीम जी—यानी कि और क्या वि...वि...विलायत में है ? नहीं साहब यहीं का...का...कानपुर में है ।

जीवन—अच्छा ! दान-दहेज कुछ नहीं चाहता ?

मुनीम जी—यानी कि भगवाग का द्विया सब कुछ है उ...उ...उसके पास । बस ल...ल...लड़की अच्छी चाहिये ।

जीवन—आशा को तो आपने देखा हो है

मुनीम जी—यानी कि ला...ला...लाखों में एक है । त...त...तभी तो कहता हूँ कि यह स...स...सम्बन्ध हो सकता है । यानी कि अगर आ...आ...आप चाहें तो ।

कल्पना—हम क्यों नहीं चाहेंगे ? आप लड़के का नाम-पता बताइये ।

मुनीम जी—यानी कि य...अ...अ...अपने दुबे जी ।

जीवन—(आश्चर्य से) यह क्या कह रहे हैं आप ? कहाँ वे लाखों के स्वामी और यहाँ हम दीन-दरिद्र । आप हँसी तो नहीं कर रहे हैं मुनीम जी ?

मुनीम जी—यानी कि हँ...हँ...हँसी क्यों करूँगा मैं ?

जीवन—कुछ समझ में नहीं आता ? दुबे जी अपने एक मात्र पुत्र राकेश का व्याह आशा से करेंगे ? उसे अपनी पुत्र-वधू बनायेंगे ?

मुनीम जी—यानी कि आप मेरा म...म...मतलब गलत समझे हैं । आशा की शादी रा...रा राकेश से नहीं होगी । यानी कि...

जीवन—(बीच में ही) फिर किससे होगी ?

मुनीम जी—यानी कि मैं तो दुबे जी की-वा...वा...बात कह रहा था ।

जीवन—(तेज स्वर में) क्या तात्पर्य आपका ? क्या आप चाहते हैं कि आशा का व्याह दुबे जी से कर दिया जाये ?

कल्पना—हे राम! मैं तो समझी थी...

मुनीम जी—यानी कि तो इ...इ इसमें बुराई क्या है ? अभी उ...उ...उनकी उमर ही क्या है ?

जीवन—(कुढ़ स्वर में) एक बूढ़े के साथ हम आशा व्याह कर दें ?

मुनीम जी—यानी कि पैँ...पैँ...पैँतालिस-छैंयालिस की उमर मैं बू...बूढ़ा नहीं होता आदमी । यानी कि से...से...सेहत तो देखिये । ला...ला...लाल रक्खे हैं काश्मीरी सेव की तरह ।

जीवन—आप पागल हो गये हैं । आप को धर्म-अधर्म का भी ध्यान नहीं रह गया है ।

मुनीम जी—यानी कि मैं तो आ...आ...आपके भले की कहता हूँ और आप नाराज होने लगे । आशा बहुत सुखी रहेगी और आ...आ...आप की किराये की भं...भंभट भी दूर हो जायेगी ।

कल्पना—(बिगड़ कर) !तो यह मतलब है आपका ? हमारी गरीबी से फायदा उठाना चाहते हैं दुबे जो ?

मुनीम जी—यानि कि आप लोगों की जि...जि...जिन्दगी भी सुधर जायेगी । द...द...दस पाँच हजार रुपया न...न...नकद भी मिल सकता है आ...आ...आपको ।

जीवन—(चीखकर) मुनीम जी ! अपनी लड़कियों और वहनों को बेचने वाले कोई और होंगे । निकल जाइये यहाँ से ।

मुनीम जी—यानि कि सो...सो...सोच लीजिये । मैं कल फिर आऊँगा ।

जीवन—यदि फिर इस रघ में कभी पैर रक्खा तो उठाकर बाहर फेंक दूँगा । दूर हो जाइये मेरी आँखों के सामने से ।

मुनीम जी—यानी कि जाता हूँ । म...म...मगर फिर आऊँगा कि...किराये की कुर्की लेकर । (दूर जाता हुआ स्वर) यानी कि स...स...समझ क्या रक्खा है अपने को । मैं भी मु...मु...मुनीम जी हूँ ।

आशा—(दूर से पास आता स्वर) मुनीम जी । ठहरिये जरा । (पास आकर) भैया ! आप लोगों की बातें मैं सब सुन चुकी हूँ ।

मुनीम जी—उनसे कह दीजियेगा कि मुझे उनका प्रस्ताव मंजूर है ।

जीवन—(दुखी स्वर में) आशा !

कल्पना—(दुखी स्वर में) आशा !

मुनीम जी—यानी कि तुम ब...ब...बहुत समझदार हो आशा बेटी !

आशा—भैया ! भगवान की शायद यही इच्छा है । जो हो रहा है वही ठीक है ।

जीवन—यदि जो हो रहा है वह भगवान की ही इच्छा है तो मैं ऐसे भगवान को नहीं मानता । (तीखे स्वर में) मुनीम जी ! इससे पहले कि मैं क्रोध से पागल होकर आपको धक्के देकर निकाल दूँ, आप चले जाइये ।

मुनीम जी—यानी कि जा...जा...जाता हूँ, जाता हूँ। यानी कि
दुबे जी से क्या कह दूँ मा...मा...मास्टर जी।

जीवन—कद देना कि किसी की बेवसी से अनुचित लाभ उठाने
वाले को मैं मनुष्य नहीं, पशु लमझता हूँ।

मुनीम जी—यानी कि ज...जवान सँभाल कर बात कीजिये, नहीं
तो अ...अ...अच्छा नहीं होगा, हाँ। (दूर जाता हुआ स्वर)
मझे स...स...समझ क्या रक्खा है ? ईंट से ईंट न ब...
बजा दी तो नाम नहीं यानी कि.....।

[दूर जाकर मुनीम जी का स्वर विलीन हो जाता है]

आशा—(दुखी स्वर में) भैया !

जीवन—(आर्द्र स्वर में) तुम्हें क्या हो गया था, आशा, तुम्हें क्या
हो गया था ?

आशा—कब तक आप इस बोझ को उठाएँगे भैया ?

जीवन—जब तक शरीर में रक्त एक की बूँद भी शेष रहेगी ! तुम
चिन्ता न करो आशा ! मुझमें अभी लड़ने की सामर्थ्य है—
इस अन्धे समाज से लड़ने की, उस वहरे भगवान् से लड़ने
की। मैं दिन-रात श्रम करके पैसा कमाऊँगा और तुम्हारा
व्याह धूम-धाम से योग्य वर के साथ करूँगा।

कल्पना—(धीमे स्वर में) भगवान के दरबार में देर भले हो, अन्धेर
नहीं है। हमारे रहते तुम क्यों चिन्ता करती हो, आशा !

आशा—भाभी मैं यह नहीं चाहती कि मेरे लिये भैया को कष्ट
उठाना पड़े। उनके लिये वैसे ही कौन कम चिन्ताएँ हैं। भैया
अगर आप मेरी यह बात नहीं मानते तो दूसरी ही मान लीजिये।
जीवन—क्या बात है ?

आशा—आप मेरे लिये कोई परेशानी न उठाएँ ! मैं शादी नहीं
करूँगी।

जीवन—(एक साथ) आशा ! यह क्या कर रही हो ?
कल्पना—

आशा—मैं ठीक कह रही हूँ, भैया ! मैं बच्चों को पढ़ा सकती हूँ ।
मुझे आज्ञा दीजिये कि कल से मैं भी मेहनत करके आपका
हाथ बटाऊँ, परिवार के बोझ को हल्का करूँ ।

जीवन—नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ।

आशा—भैया ! भाभी का भी खयाल कीजिये । आप अकेले कहाँ
तक करेंगे ? मुझे भी काम करने दीजिये । समझ लीजिये
कि मैं आपकी वहिन नहीं, भाई हूँ ।

जीवन—(धीमे स्वर में जैसे स्वगत भाषण करता हुआ) समझ लूँ,
वहन नहीं, भाई हों, वहन नहीं, भाई हों ! वहन-भाई, भाई-
वहिन ! नहीं ! (तेज स्वर में) नहीं । ऐसा कभी नहीं हो
सकता, कभी नहीं हो सकता । पुरुष मैं हूँ ! तुम दोनों का
ध्यान रखना मेरा कर्तव्य है । ऐसा शब्द फिर कभी मुँह पर
न लाना आशा ! (दूर जाता हुआ स्वर) मेरी आशा क्वाँरी
नहीं रहेगी, मेरी आशा क्वाँरी नहीं रहेगी ।

आशा—भाभी ! दवा ले आयी हूँ ! पी लो !

कल्पना—(चौक कर) दवा ! आह ! (गीले स्वर में) आशा ! क्या
गरीबी से बढ़कर भी कोई और पाप है ।

आशा—तुम गरीबी को पाप कहती हो, भाभी । यह तो वह आग
है जिसमें तपकर मन का कुन्दन खरा हो जाता है । यह तो
वह कसौटी है जो सोने और पीतल की परख करती है ।

कल्पना—आशा ! क्या उम्र भर इसी आग में जलना पड़ेगा, पत्थर
से भी कड़ी इस कसौटी की रगड़ सहनी पड़ेगी ? (स्वर काँप
जाता है) ।

आशा—वाणी में कम्पन और आंखों में आँसू क्यों ? नहीं,
भाभी नहीं ! आँसू पोंछ डालो । भैया देखेंगे तो.....!
भाभी ! हँसना ही जीवन है । रोने से कुछ नहीं होगा, रोना
कायरता है ।

कल्पना—(सिसकते हुये) मैं अपने लिये नहीं, तुम्हारे लिये रो रही हूँ, आशा ! तुम्हारा भविष्य..... ।

आशा—(बाँच में ही) भविष्य किसी ने भी नहीं देखा है, भाभी ! और फिर तुम यह क्यों भूल जाती हो कि इस आग में जलने वाले केवल हमी लोग नहीं हैं । देश के करोड़ों परिवार इस कठिन परीक्षा को दे रहे हैं । भाभी ! सुख में हँसना तो सभी जानते हैं पर दुख में हँसना ही सच्चा जीवन है । जो दुख में भी हँसता रहता है वही सच्चा मनुष्य है ।

कल्पना—(भीगे स्वर में) आशा ! मेरी आ...शा ! !

आशा—भाभी ! मेरी अच्छी भाभी ! !

[बोलते-बोलते फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठभूमि से ६ घन्टे बजने की आवाज आती है]

जीवन—(ऊँचे स्वर में) एक गिलास पानी ले आना जरा (धीमे स्वर में) ओह ! आज तो सवेरे से ही आग बरसने लगी है ।

कल्पना—(पाम आकर) यह लो, गुड़ का शरबत बना लायी हूँ । खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं ।

जीवन—कितना ध्यान रखती हो तुम मेरा । लाओ ।

कल्पना—मगर तुम्हें तो बिलकुल ध्यान नहीं है अपना । इतवार है, लेकिन तुम आज भी सुबह से ही कॉपियों का बण्डल लिये बैठे हो ।

जीवन—मेरे लिए सब दिन एक से हैं, कल्पना !

कल्पना—इस तरह कितने दिन चलेगा ? आखिर आराम भी तो जरूरी है ।

जीवन—(हँसकर) आराम ! यह भी अच्छी रही ! (गम्भीर होकर) निर्धनों के शब्दकोष में आराम नाम का कोई शब्द होता ही नहीं ।

कल्पना—शरीर को न सही मगर दिमाग को तो आराम दिया करो । अभी दस मिनट पहले आयी थी । कापियाँ सामने पड़ी थीं मगर तुम दीवार की तरफ एकटक आँखें लगाये न जाने क्या सोच रहे थे । (ईंमकर) हर समय सोचने का रोग ठीक नहीं है ।

जीवन - कल्पना, तुम वास्तव में मेरी कल्पना हो । यदि तुम न होतीं तो मेरा जीवन कभी का टूटकर बिखर गया होता ।

कल्पना—तुम तो बनाने लगे । अच्छा, बताओ क्या सोच रहे थे ?

जीवन—कई विचार एक साथ उठकर मेरे माँस्तक को झुकाने लगे थे । मैं सोच रहा था - इस कबूतरखाने के विषय में जिसे हम मकान कहते हैं, सोच रहा था आशा के विषय में, तुम्हारे विषय में, (स्वर भारी हो जाता है) अपने उन वच्चों के विषय में जिन्हें जीवित रहने के लिये आवश्यक सामग्री भी न दे सका । कल्पना ! क्या हमें भी रहने के लिये एक खुला हुआ, हवादार, स्वच्छ मकान नहीं चाहिये ?

कल्पना—चाहिये क्यों नहीं ? मगर जब भाग्य में यही कोठरी है तब..... ।

जीवन--(बीच में ही) न जाने क्यों भाग्य पर से विश्वास उठ गया है, कल्पना ! मेरी आत्मा विद्रोही बन गयी है । एक ओर मैं सड़कों पर घूमती हुई रेशमी वस्त्रों में लिपटी नारियों को देखता हूँ, और दूसरी ओर गन्दे, फटे और मोटे वस्त्रों से अपनी लाज छिपाने का प्रयास करती हुई तुम्हें और आशा को । मनुष्य-मनुष्य में यह भेद क्यों है ? क्या तुम्हारे और आशा के लिये भी रेशम के वस्त्र नहीं चाहिये ?

कल्पना—हमें नहीं चाहिये रेशमो कपड़े । मोटे-भोटे जंसे हैं, वे ही ठीक है ।

जीवन—यह अपने को छलना है । मुझे प्रसन्न करने के लिये तुम ऐसा कह रही हो । किन्तु अब मैं सोचने लगा हूँ, समझने लगा हूँ । तुव सोचती होगी, मुझे क्या हो गया है । जो आँखें चार-चार वच्चों की मृत्यु पर न रोयीं उनमें आज आँसू क्यों ? (स्वर गीला हो जाता है) जानना चाहती हो ? (एक क्षण रुक कर) जब आशा दुबे जी से व्याह करने को तैयार हो गयी तब जैसे किमी ने मेरे गाल पर तमाचा मार दिया । और...और फिर आजीवन कुमारी रहकर, कन्धे से कन्धा भिड़ाकर काम करने की साध तो मेरी बेवसी को क्रूर चुनौती थी । मेरा रोम-रोम रो उठा; कल्पना, मेरा रोम-रोम रो उठा ।

कल्पना—भूल भी जाओ उन बातों को । बीती बातें सोचकर दुखो होने से क्या लाभ ...?

जीवन—मुझसे अभागा व्यक्ति इस संसार में और कोई नहीं है, कल्पना ! मैं...मैं... न वच्चों को ममता दे सका, न बहन को स्नेह और न पत्नी को प्यार ! (दबी सिमकी) आज...आज का बहन को व्याह करने की भी सामर्थ्य नहीं, पत्नी का इलाज कराने की भी सुविधा नहीं ।

कल्पना—मेरी फिकर न करो तुम ! अपने आप ही ठीक हो जाऊँगी । रही आशा, सो भगवान लड़की बनाने से पहले ही उसका घर बना देते हैं । देर-सवेर तो होती ही है शादी-व्याह के कामों में ।

जीवन—नारी की सहनशीलता पुरुष में नहीं होती । मैं सब कुछ राम-आसरे ही छोड़कर नहीं बैठ सकता ।

[बाहर कार आकर रुकने की आवाज । फिर कुण्डी खटखाने की आवाज]

जीवन—(ऊँचे स्वर में) कौन है ?

लक्ष्मीपति—(दूर से) जो है सो पण्डित जीवनलाल जी शर्मा
अन्दर हैं क्या ?

जीवन—(धीमे स्वर में) तुम अन्दर जाओ, कल्पना ! न जाने कौन
है ! (ऊँचे स्वर में) द्वार खुला है । अन्दर आजाइये ।

लक्ष्मीपति—(पास में) जो है सो, शर्मा जी आप ही हैं क्या ?

जीवन—जी हाँ ! बैठिये । मैंने पहचाना नहीं आपको ।

लक्ष्मीपति—(हँसकर) जो है सो, कोई बात नहीं । अभी पहचान
लेंगे । (ऊँचे स्वर में) सामान अन्दर ले आओ ।

जीवन—सामान ? कैसा सामान है ?

लक्ष्मीपति—जो है सो, फल-फूल है बच्चों के लिये । (हँसकर)
ले आये ? ठीक है । यहीं जमीन पर रख दो और जो है सो
बाहर गाड़ी छाया में खड़ी कर लो ।

जीवन—तुम कीजिये । आप कौन हैं, यह फल, भिठाई और
खिलौने क्यों लाये हैं ?

लक्ष्मीपति—जो है सो, कहा न कि यह सामान बच्चों के लिये है ।
जो है सो बुजुर्गों ने कहा है कि खाली हाथ किसी के घर
नहीं जाना चाहिये ।

जीवन—पर...पर आप अपना परिचय तो दीजिये ।

लक्ष्मीपति—जो है सो मुझे सेठ लक्ष्मीपति कहते हैं ।

जीवन—यह तो आप का वेष-भूषा ही बता रही है । परन्तु.....

लक्ष्मीपति—(वीच में ही) जो है सो, भेद से आ रहा हूँ मैं । बात
यह है जो है सो.....

जीवन—मैं समझ गया । आप किसी के नवर वढ़वाने आये है ।

लक्ष्मीपति—जो है सो मेरा ही लड़का है । शुरू से अंग्रेजों स्कूल में
पढ़ा । इसलिए हिन्दी कम आती है उसे । जो है सो, इसी
आप को कष्ट देना पड़ा ।

जीवन—मैं कुछ नहीं कर सकता, विवश हूँ। आप बड़े आदमी हैं।

इस वर्ष न सही अगले वर्ष सही।

लक्ष्मीपति—जो है सो, अगर इस साल वह पास नहीं हुआ तो लाखों का घाटा हो जायेगा।

जीवन—लाखों का घाटा ? मैं समझा नहीं आपका आशय।

लक्ष्मीपति—जो है सो, बात यह है कि कलकत्ते के एक सेठ की एकलौता लड़की से उसकी सगाई तय हुई है। दस लाख तो दहेज में मिलेंगे, जो है सो, और फिर बाद में सारी सम्पदा अपनी तो होगी ही।

जीवन—इससे उसके पास-फेल होने से क्या सम्बन्ध है ?

लक्ष्मीपति—जो है सो, यही तो आफत है। लड़की ने भी इस साल दसवीं का ही इम्तहान दिया है। उसके पिता का कहना है कि अगर लड़का पास नहीं हुआ तो रिश्ता टूट जायगा। जो है सो, और अगर पास हो गया तो इसी महालग में शादी हो जायगी। और फिर वे उसे अपने खर्चे से विलायत भेजेंगे। अब बताइये, इस साल लड़के का पास होना जरूरी है या नहीं ?

जीवन—तो आपने एक तरह से अपने लड़के का सौदा किया है ?

लक्ष्मीपति—(हँसकर) जो है सो, आजकल जमाना ही ऐसा है। कदम-कदम पर सौदे करने पड़ते हैं। जो है सो, तीन-तीन लड़कियों की शादियों में देते-देते अभी कमाई खत्म हो गयी थी। अब बारा आई है लेने की। एक ही लड़का है भगवान का दिया। जो है सो, अगर अब भी न लेंगे तो कब लेंगे।

जीवन—यह लेना-देना मुझे पसन्द नहीं आप...

लक्ष्मीपति—(बीच में ही) जो है सो, अभी अनुभव नहीं है आपको। लेना-देना तो आज का व्यापार हो गया है। अगर

आपके भी कोई सयानी लड़की या बहन होती तो मालूम पड़ता, जो है सो ।

जीवन—(भारी स्वर में) मेरी एक सयानी बहन है, सैठ जी ।
पैसे के अभाव के कारण उसका व्याह अभी तक नहीं रक पाया हूँ । किन्तु..किन्तु.. मैं अपने सिद्धान्तों की हत्या नहीं कर सकता, आदर्शों का गला नहीं घाँट सकता । आप ये फल फूल भी ले जाइये । मेरे यहाँ कोई वच्चा नहीं है ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, कोई वच्चा नहीं है ? क्या शादी...

जीवन—(बीच में ही दुखी स्वर में) शादी हो गई है । चार वच्चे भी हुये थे पर भूख और रोग ने उन्हें मुझसे छीन लिया ।
(आर्द्र स्वर में) अब पत्नी भी क्षय रोग से पीड़ित है ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, मुझे हमदर्दी है आपसे (हककर) देखिये, मैं आपसे सौदा करना चाहता हूँ । आप लड़के के नम्बर बढ़ा दीजिये और मैं आपको पाँच हजार ..

जीवन—(कठोर स्वर में) सैठ जी । इन कागज के टुकड़ों को जेब में ही रखिये । इनसे आप मुझे, मेरे सिद्धान्तों को, मेरे आदर्शों को और मेरी आत्मा को मोल लेना चाहते हैं । जाइ ये! किसी भी मूल्य पर नम्बर नहीं बढ़ेंगे ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, आप इन्सान नहीं, पत्थर हैं । वच्चों को मौत हो गयी, बहन क्यारो बैठी है , बीबी घुल-घुल कर मर रही है और आपकी आँखें अब भी बन्द हैं । आप अब भी अपने सिद्धान्तों और आदर्शों को लिये बैठे हैं । पैसे का मूल्य अब भी आपकी समझ में नहीं आया । जो है सो.....!

जीवन—पैसे का मूल्य तो समझता हूँ परन्तु उसके लिये मैं अपने को नहीं बेच सकता । यह सौदा बहुत महँगा है ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, सात हजार दूँगा । अब तो.....

जीवन—(बीच में ही) नहीं, नहीं, नहीं ! (कम्पित स्वर में) आप

जाइये, सेठ जी, आप जाइये ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, घर आयी लक्ष्मी को ठुकराना ठीक नहीं । वहती गंगा में हाथ धोना ही बुद्धिमानो है । जो है सो, कागज के इन हरे-नीले बेजान टुकड़ों में कितनी जान है यह आप नहीं जानते । ये आपकी बहन की माँग का सिंदूर हैं, पत्नी की नयी जिन्दगी हैं । इन्हें ठकुरा कर आप बहन का सोहाग ठकुरा रहे हैं, पत्नी को मौत के मुँह में भोंक रहे हैं ।
जीवन — (भारी स्वर में) बस कीजिये; सेठ जी बस कीजिये । पाप का पैसा लेने से पहले मैं मर जाना पसंद करूँगा ।

लक्ष्मीपति—जो है सो, आप दुनियादारी से दूर हैं अभी । पैसा पाप-पुन्य नहीं जानता । और फिर यह तो सौदा है । आप नम्बर बढ़ा रहे हैं, मैं पैसा दे रहा हूँ । इसमें पाप कैसा ? बोलिये, मंजूर है सौदा ? मैं दस हजार तक देने को तैयार हूँ ।
जीवन—(दुबल स्वर में) मैं...मैं...विवश हूँ, सेठ जी । आप जाइये
.....(स्वर टूट जाता है)

लक्ष्मीपति—जो है सो, आपकी मर्जी । मैं जा रहा हूँ । मगर एक बार फिर सोच लीजिये । सिद्धान्त और आदर्श, बहन के सुख और पत्नी की जिन्दगी से अधिक कीमती नहीं हैं । जो है सो, बहन को उन्न भर क्वारा रखना है तो रखिये, पत्नी को तिल-तिल कर मारना है तो मारिये । लेकिन इतना याद रखिये कि इससे न तो आपको इस लोक में शांति में मिलेगी और न परलोक में ।

[लक्ष्मीपति की पदचाप दूर हो जाती है]

जीवन—(स्वगत-धीमे स्वर में) ओह ! आशा का सोहाग, कल्पना का जीवन, आशा ! कल्पना !! (ऊँचे किंतु टूटे, थके और पराजित स्वर में) ठहरिये सेठ जी । लौट आइये !! मुझे मुझे सौ...दा...स्योकार है ।

[जीवन के अन्तिम वाक्य की समाप्ति के साथ-साथ फेड आउट]

नूरजहां

[ऐतिहासिक नाटक]

[पृष्ठभूमि से नूरजहाँ की परछाँई के हास्य का स्वर उभरता है,
स्वर पास आकर कुछ देर तक गूँजता रहता है ।]

नूरजहाँ—यह कौन हँस रहा है ?

परछाँई—मुझे नहीं पहचानती ? नूरजहाँ, मैं तुम्हारी परछाँई हूँ ।

नूरजहाँ—तुम कोई भी क्यों न हो, इस तरह हँसो मत । आखिरी
दिनों में तो मुझे इत्मीनान की साँस लेने दो ।

परछाँई—आखिरी दांव हार कर भी जिन्दगी से ऊँची नहीं ?

नूरजहाँ—हँसते-हँसते हार को भी गले लगाना सबसे बड़ी जीत है ।

परछाँई—यह अपने को धोखा देना है, मन को झुठलाना है ।

नूरजहाँ—इसका मतलब यह है कि तुम मुझे नहीं पहचानती ।

तुम झूठ बोल रही हो, तुम मेरी परछाँई नहीं हो—तुम मेरी
परछाँई नहीं हो ।

परछाँई—(हँसकर) मुझसे तुम्हारा कोई भी भेद नहीं छिपा है ।

(हँसकर) मासूम बच्ची की शक्ल में तुम हिन्दोस्तान आयी
थीं । मलिक मसूद के जरिये तुम्हारे वालिद का मुगल दरबार
में आना-जाना हो गया । तुम जवान हुईं और एक दिन...

नूरजहाँ—खुदा के लिये बस भी करो । क्यों बीते दिनों की याद
दिला रही हो ।

परछाँई—ताकि तुम्हें यकीन हो जाये कि मैं तुम्हारी परछाँई हूँ ।

शाहजादा सलीम ने तुम्हें देखा और.....

नूरजहाँ—(चिढ़कर) अगर तुम मेरी परछाँई हो तो यह भी जानती
होगी कि मेरी शादी दूसरी जगह कर दी गई क्यों कि मैं एक
मामूली बाप की बेटी थी ।

परछाँई—जानती हूँ । शेर अफगन को तुमने अपना सच्चा प्यार
दिया । लेकिन खुदा को तुम्हारी खुशी मन्जूर न थी । कुतुब-

हीन के आदमियों ने तुम्हारे शौहर को कत्ल कर दिया ।

तुम अपनी बेटी लाड़िली बेगम के साथ आगरे आ गयीं ।

नूरजहाँ—सुल्ताना सलीमा बेगम की कनीज बनकर ।

परछाई—मगर तुम्हारी किस्मत में तो हिन्दोस्तान की मलिका होना लिखा था । एक दिन शहंशाह जहाँगीर ने तुम्हें देखा और.....

[बोलते-बोलते फेड आउट । जहाँगीर के उभरते हुये स्वर से फेड इन]

जहाँगीर—तुम्हें बंगाल से यहाँ आये चार साल हो गये, मेहर,

मगर तुम्हारे चाँद से चेहरे पर आज भी उदासी की घटा है ।

नूरजहाँ—(दुखी स्वर में) यह बदली तो उम्रभर रहेगी, आलीजाह ।

जहाँगीर—ऐसा न कहो, मेहर ! इधर देखो, मुगल सल्तनत का मालिक तुम्हारे सामने भिखारी बनकर खड़ा है । मेरी भोली अपने प्यार से भर दो ।

नूरजहाँ—मेरा प्यार मर चुका है , आलीजाह !

जहाँगीर—ऐसा कहकर मेरा दिल न दुखाओ, मेहर ! शायद तुम अब तक मुझसे खफा हो । जब हमारे प्यार का गला घोंटा गया था, तब मैं सलीम था— शाहजादा सलीम । मगर अब जहाँगीर हूँ—शहंशाह जहाँगीर ।

नूरजहाँ—मैं तब भी एक अदना इन्सान की बेटी थी और अब भी एक अदना इन्सान की ही बेवा हूँ । मखमल में टाट का पेवन्द नहीं लगता, आलीजाह !

जहाँगीर—मुझे किस गुनाह की सजा दे रही हो मेहर ! (हककर) शायद तुम समझती हो कि शेर अफगन के खून में मेरा हाथ.....

नूरजहाँ—(बीच में ही) अगर ऐसा समझती होती तो आगरे में और मेरी बेटी नहीं, दो लाखों आती, जहाँपनाह !

जहाँगीर—यह सुनकर दिल का बोझ हल्का हो गया, मेहर ! अब हमारे बीच में कोई दीवार नहीं है । हम आज ही हमेशा-हमेशा के लिये एक हो जायेंगे । तुम मेरी महल की रोशनी बनोगी — नूरमहल ! नहीं, नूरमहल नहीं ! नूर जहाँ ! तुम सारे जहान की रोशनी हो ! आज से मैं तुम्हें नूरजहाँ ही कहा करूँगा ।

[जहाँगीर के बोलते-बोलते फेड आउट । फेड इन होने पर पृष्ठभूमि पर जहानादियों का स्वर उभरता है । स्वर पाम आकर फिर पृष्ठभूमि में चला जाता है]

परछाँई—और इस तरह तुम हिन्दोस्तान की मलिका बनीं अपनी खिदमत, मोहब्बत और अकल से तुमने बादशाह सलामत को अपने बस में कर लिया । सल्तनत की वागडोर तुम्हारे हाथों में आ गयी ।

[अन्तिम वाक्य के साथ फेड आउट । जहाँगीर के उभरते हुये स्वर के साथ फेड इन]

जहाँगीर—यह गुलाब की भीन-भीनी खुशबू कहाँ से आ रही है बेगम ? फूल तो कहीं दिखाई नहीं देता ।

नूरजहाँ—(हँसकर) गुलाब की रूह मेरे लिबास में लगी है ।

जहाँगीर—(प्रसन्नता से) अजीब-अजीब चीजें निकालती रहती हो तुम । रोज नयी-नयी पोशाकें, जेवरों के नये-नये नमूने, नयी-नयी सजावट । वाह ! किस-किस की दाद दूँ, बेगम ! बेदाग हुस्न, मोहब्बत से लवरेज दिल, बुलन्द खयालों से भरा दिमाग ! वाह ! वाह ! !

नूरजहाँ—आप तो इस नाचीज को.....

जहाँगीर—भई, वाह ! तुम्हारी तो हर बात ही निराली है (हककर) खुदा के लिये कोई नयी किस्म की शराब भी बना दो !

नूरजहाँ—(हसकर) ज्यादा पीना ठीक नहीं है, आलाजाह !
सल्तनत का काम.....

जहाँगीर—(बीच में ही) वह तो तुम ठीक तरह से अन्जाम दे ही रही हो । मुझे तो पीने के लिये शराब और खाने के लिये कवाब मिल जाये, वस ।

नूरजहाँ—शराब और कवाब को ही जिन्दगी का मकसद समझना पागलपन है, जहाँपनाह !

जहाँगीर—पागलपन... ? ओह, अच्छी याद दिलायी ! तुन्हें मालूम है महावत खाँ पागल हो गया है ।

नूरजहाँ—(न समझने के ढंग में) पागल हो गया है ?

जहाँगीर.—हाँ ! आज मुझसे कहने लगा...

[जहाँगीर का स्वर पृष्ठ भूमि में चला जाता है और महावत खाँ का स्वर उभरता है ।]

महावत खाँ—गुस्ताखी माफ हो, आलीजाह ! आप तो जाम में डूबे रहते हैं, और मलिकाजहाँ सल्तनत तबाह करने पर तुली हैं ।

जहाँगीर—(कठोर स्वर में) महावत खाँ... !

महावत खाँ—मैं जो कुछ कह रहा हूँ सल्तनत की भलाई के लिये कह रहा हूँ । यह सिर्फ मेरी आवाज नहीं, सैकड़ों दरबारियों की आवाज है ।

जहाँगीर:—यह सरासर वगावत है ।

महावत खाँ—यह वगावत नहीं, वफादारी है, आलीजाह ! मलिका जहाँ के वालिद एतमादुद्दौला की बढ़ती हुई ताकत, उनके भाई आसफ खाँ का बुलन्द रुतबा, शाहजादा खुर्रम पर मलिकाजहाँ को खास मेहरबानियाँ, मेरी बात का सुबूत हैं ।

जहाँगीर—मुझे मलिका पर पूरा भरोसा है । वे जो कुछ करती हैं, सल्तनत की भलाई के लिये ही करती हैं ।

महावत खाँ—शायद उन्होंने अपने भाई आसफ खाँ को बेटी की शादी शाहजादा खुर्रम के साथ सल्तनत की भलाई के लिये ही कराई है ? आलीजाह ! आप नेक दिल हैं, इसीलिये सब को नेक समझते हैं । क्या-क्या साजिशें हो रही हैं, आपको नहीं मालूम ! शाहजादा खुर्रम की बढ़ती हुई ताकत को रोकने में ही तख्त और ताज की भलाई है ।

जहाँगीर—आखिर तुम्हारा मन्शा क्या है ?

महावत खाँ—मलिका जहाँ के चंगुल से अपने को आजाद कीजिये, आलीजाह ! आप जैसे शहंशाह को बेगम के इशारों पर चलना जेबा नहीं देता ।

जहाँगीर—(कड़े स्वर में) अपनी भलाई-बुराई में खूब समझता हूँ ।

मलिका के खिलाफ एक लफ्ज भी सुनने को तैयार नहीं हूँ ।

महावत खाँ—आपकी मर्जी ! आने वाले खतरे से आपको आगाह करना मेरा फर्ज था । (दूर जाता हुआ स्वर) मैंने अपना फर्ज पूरा कर दिया, आलीजाह !

[महावत खाँ का स्वरपृष्ठ भूमि में जाकर विलीन हो जाता है ।

नूरजहाँ के मधुर हास्य की ध्वनि उभरती है ।]

नूरजहाँ—(हँसकर) तो महावत खाँ आपको आगाह करने आया था ।

जहाँगीर—जो मलिका की नियत पर शक करे वह पागल नहीं तो और क्या है ?

नूरजहाँ—उसकी बातों से बगावत की बू आती है । कहीं वह...

जहाँगीर—(बीच में ही) शेरनी गीदड़ से डर गयी ?

नूरजहाँ जिसके सिर पर आपका साया हो उसका एक गीदड़ तो क्या, सैकड़ों शेर भी कुछ नहीं कर सकते ।

जहाँगीर—खूब, बहुत खूब ! (ऊँचे स्वर में) सलीकी मेरो सुराही और जाम ! (हँसकर) बेगम, कल हम शिकार खेलने चलेंगे ।

पिछलो बार तो तुम्हारी घोड़ी ने मेरे घोड़े को पस्त कर दिया था । देखें इस बार जीत किसकी होती है ।

[जहाँगीर और नूरजहाँ के सम्मिलित हास्य के साथ फेड आउट !

परछाँई के उभरते हुये स्वर के साथ पुनः फेड इन ।]

परछाँई—जब बादशाह सलामत ने महावत खाँ की बात अनसुनी कर दी तब उसने शाहजादा खुसरो को तख्त का वारिस बनाने की कोशिश की ।

नूरजहाँ—हाँ, तुम ठीक कहती हो ! शाहजादा खुर्रम के रास्ते में उसने काँटा खड़ा कर दिया ।

परछाँई—मगर तुम हिम्मत न हारीं । शाहजादा खुसरो को कैद करके तुमने अपने भाई आसफ खाँ की हिरासत में रख दिया ।

नूरजहाँ—मगर फिर भी कदम-कदम पर खतरा था ।

परछाँई—शायद इसीलिये तुमने शाहजादा खुसरो को शाहजादा खुर्रम के सुपुर्द कर दिया । वह उसे बुरहानपुर के किले में ले गया जहाँ उसका गला घोट दिया गया ।

नूरजहाँ—(व्यथित स्वर में) ऐसा न कहो, खुदा के लिए ऐसा न कहो ।

परछाँई—क्यों, इसमें बुराई क्या है ? सयासत में तो ऐसा होता ही है । शाहजादा खुर्रम का रास्ता साफ हो गया ।

नूरजहाँ—मगर जिसे मैंने वच्चे की तरह दूध पिलाया वही साँप बनकर डसने को तैयार हो गया ।

परछाँई—(हँसकर) यह क्यों नहीं कहतीं कि उसकी बढ़ती हुई ताकत से तुम खुद दहल गयीं । तुमने समझ लिया कि वह तुम्हारे इशारों पर नहीं नाचेगा । और इसीलिये तुमने शाहजादा शहरयार को चुना, अपनी बेटी लाडिली बेगम से उसकी शादी की, बादशाह सलामत की नज़रों में उसे ऊँचा उठाया ।

नूरजहाँ—(चिढ़कर) और कुछ कहना है ?

परछाँई—घौलपुर की जागीर पर शाहजादा खुर्रम की सालों से नजर थी, मगर तुमने वह जागीर शाहजादा शहरयार को दिला दी। और जब शाहजादा खुर्रम ने बगावत का भण्डा बुलन्द किया तब.....

[स्वर पृष्ठभूमि में चला जाता है। फिर महावत खाँ का स्वर उभरता है।]

महावत खाँ—(दूर से पास आता हुआ [स्वर]) आपने याद फरमाया था, मलिका !

नूरजहाँ—आओ, महावत खाँ ! बैठो !

महावत खाँ—बादशाह सलामत की तबियत कैसी है ?

नूरजहाँ—दिन पर दिन गिरती जा रही है। (दुखी स्वर में) बादशाह सलामत बीमार हैं, सिर पर वालिद-वालिदा का साया भी नहीं रहा, शाहजादा खुर्रम बगावत पर आमादा है। हर तरफ अँधेरा ही अँधेरा है।

महावत खाँ—शाहजादा खुर्रम पर मुझे शुरू से ही शक था। इसी लिये मैं शाहजादा खुसरो...

नूरजहाँ—(बीच में ही) गुजरी बातों को भूल जाना ही ठीक है, महावत खाँ ! अब तो शाहजादा खुर्रम को दबाने के लिये तुम्हारी मदद की जरूरत है।

महावत खाँ—हुक्म दीजिये, मलिकाजहाँ !

नूरजहाँ—यह तो तुम्हें मालूम ही है कि शाही फरमान की परवाह न करके खुर्रम ने कन्दहार जाने से इन्कार कर दिया था।

महावत खाँ—हाँ, और फिर मजबूर होकर आपको शाहजादा शहरयार को भेजना पड़ा।

नूरजहाँ—अब खुर्रम तख्त को छीनने आ रहा है।

महावत खाँ—मेरी तलवार की बार अभी कुन्द नहीं हुई है, मलिका-जहाँ !

नूरजहाँ—अब सिर्फ तुम्हारा ही भरोसा है । वक्त की बात तो देखो ।

सगा भाई भी जानी दुश्मन बन गया है ।

महावत खाँ—(हंसकर) आसफ़ खाँ तो दामाद का साथ देंगे ही ।

मगर आप फिक्र न करें । शाहजादा खुर्रम को इन्हीं कदमों में न डाल दूँ, तो मेरा नाम महावत खाँ नहीं ।

[महावत खाँ के अन्तिम वाक्य के साथ फेड आउट । फिर फेड इन पृष्ठभूमि से युद्ध-घोष, अस्त्र-शस्त्र, तथा घोड़ों की टापों का स्वर उभरता है । ये ध्वनियाँ पास आकर फिर पृष्ठभूमि में चली जाती हैं ।]

परछाँई—और वाकई महावत खाँ ने शाहजादा खुर्रम के छक्के छुड़ा दिये । हार पर हार खाकर वह बादशाह सलामत से माफी माँगने पर मजबूर हो गया ।

नूरजहाँ—ओर मेरी नेकी देखो कि मैंने माफ़ो दिला दी ।

परछाँई—माफी दिलाने में भी तुम्हारी चाल थी । खुर्रम को हराने के वाद महावत खाँ की ताकत बहुत बढ़ गयी थी । तुम्हें डर था कि वह शाहजादा परवेज को तख्त का वारिस बनाने की कोशिश करेगा ।

नूरजहाँ—मगर मेरा डर भूठ नहीं था ।

परछाँई—और तुमने शाहजादा परवेज और महावत खाँ को अलग करने की गरज से महावत खाँ को बंगाल भिजवा दिया । उसको नीचा दिखाने के लिये उस पर भूठे इल्जाम लगाये ।

नूरजहाँ—इल्जाम भूठे नहीं थे । बंगाल-बिहार में मिले हाथी और बागी जागीरदारों के खजाने उसने आगरे नहीं भेजे ।

परछाँई—और उसके दामाद को क्यों कैद किया गया था ।

नूरजहाँ—क्योंकि उसने बादशाह सलामत को इजाजत लिये बगैर ही शादी की थी ।

परछाँई—महावत खाँ इस तौहीन को बरदशत न कर सका । वह बागी हो गया और.....

[स्वर पृष्ठभूमि में चला जाता है । फिर भेलम नदी की ध्वनि दूर मेना की चहल-पहल, हाथी तथा घोड़ों के स्वर उभरते हैं ।]

जहाँगीर—(धीमे स्वर में) बेगम, क्या नदी पर पुल बन गया ?

नूरजहाँ—हाँ ! हमारी फौज भेलम के उस पार पहुँच गयी है । कुछ देर में हम भी नदी पार कर लेंगे ।

जहाँगीर—(निःश्वास छोड़कर) अब तो काबुल पहुँच कर ही सेहत ठीक हो सकेगी । यहाँ की गर्मी बर्दाश्त नहीं होती ।

नूरजहाँ—चन्द दिनों में हम काबुल पहुँच ही जायेंगे ।

[दूर से घोड़ों की टापों का स्वर]

जहाँगीर—यह आवाज कैसी ?

नूरजहाँ—देखती हूँ (एक क्षण बाद दूर से) महावत खाँ आ पहुँचा ।

[नदी में कूदने की आवाज]

महावत खाँ (दूर से पास आता हुआ स्वर) मलिका कहाँ निकल गयीं । (पास आकर) मगर आप हमारी हिरासत में हैं,

बादशाह सलामत ।

जहाँगीर—(टूटे स्वर में) ओह,.....बागी, गद्दार, धोखेवाज.....

[महावत खाँ का अट्टहास । दूर से कोलाहल, अस्त्र-शस्त्रों की झंकार]

महावत खाँ—यह क्या...?(दूर से एक पल बाद) ओह, मलिका जहाँ हाथी पर सवार होकर बादशाह सलामत को आजाद कराने आ रही हैं । आइये, आइये, मलिका जहाँ, आपकी फौज तो भाग खड़ी हुई, आप अकेले ही छुड़ा लेंगी शहंशाह को ?

नूरजहाँ—(दूर से) जानती हूँ, अकेले में उन्हें आजाद नहीं करा

सकती । (पास आकर) मैं उनके साथ खुद भी कैद होने आयी हूँ ।

महावत खाँ—शुक्रिया ! बहुत-बहुत शुक्रिया । सालों आपने बादशाह सलामत को अपनी कैद में रक्खा, अब हमारी बारी है ।

नूरजहाँ—मेरी जंजीरें प्यार और खिदमत की थीं, जोर की नहीं । याद रखो महावत खाँ, जोर की जंजीरों में जंग लग जाती है और वे खुद-ब-खुद टूट जाती हैं ।

महावत खाँ—(अट्टहास करके) इसका फैसला तो आने वाला वक्त ही करेगा ।

[अट्टहास पृष्ठभूमि में जाकर विलीन हो जाता है । फिर परछाँई का हास्य उभरता है ।]

परछाँई—(हँसकर) आने वाले वक्त ने साबित कर दिया कि महावत खाँ तुम्हारे सामने महज एक वच्चा है । सौ दिन बाद ही तुमने अपनी चालाकी से बादशाह सलामत को आजाद करा लिया और.....

नूरजहाँ—(बीच में ही) महावत खाँ को जान बचाकर भागना पड़ा । वह दक्षिण में जाकर अपने जानी दुश्मन खुर्रमसे मिल गया ।

परछाँई—क्योंकि शाहजादा परवेज की मृत्यु हो चुकी थी । बादशाह सलामत की सेहत गिरती गयी और एक दिन काश्मीर से लाहौर आते वक्त राजौरी में उनकी जिन्दगी का चिराग बुझ गया ।

[स्वर धीरे-धीरे विलीन होता है । फिर पृष्ठभूमि में कोलाहल उभरता है]

नूरजहाँ—(ऊँचे स्वर में) बादशाह सलामत की आखिरी खाद्दिश थी कि शाहजादा शहरयार तख्त पर बैठे ! आगरे का तख्त शहरयार का है ।

[कई कण्ठों का सम्मिलित घोष—शाहंशाह शहरयार जिन्दाबाद !
 शहंशाह शहरयार जिन्दाबाद ! दूर से घोड़ों की टापों का स्वर पास
 आता है । कोलाहल, चीख, पुकार ये ध्वनियाँ धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में
 चली जाती हैं ।]

नूरजहाँ—आह! मेरे ख्वाब धूल में मिल गये । आसफ खाँ ने
 शाहजादा शहरयार को कैद कर लिया, मैं भी उनकी कैद में
 हूँ । या खुदा !

[दूर पर—“शहंशाह शाहजहाँ जिन्दाबाद !” का घोष ।]

नूरजहाँ—खुर्रम शहंशाह हो गया । जालिमों ने शहरयार की आँखें
 निकलवा लीं ।

महावत खाँ—(दूर से आता हुआ स्वर) महावत खाँ से टक्कर लेने
 का नतीजा देख लिया आपने ।

नूरजहाँ—लेकिन फिर भी जीत मेरी ही हुई महावत खाँ । तुम तो
 हमेशा यही चाहते थे कि खुर्रम तख्त पर न बैठे ।

महावत खाँ—सयासत में दोस्ती-दुश्मनी चलती ही रहती है ।
 शहंशाह ने मुझे तो खानखाना का ओहदा दिया है । आप
 अपनी सोचिये ।

नूरजहाँ—मेरे लिये दो लाख रुपये साल का वजीफा ही काफी
 है ।

महावत खाँ—शाहजादा खुर्रम के तख्त पर बैठने से आपको
 मायूसी नहीं हुई ?

नूरजहाँ—मैं तो खुश हूँ कि सल्तनत की बागडोर मजबूत हाथों
 में है ।

महावत खाँ - खुदा गवाह है, आपको समझना बहुत मुश्किल है ।
 आज जीत कर भी मैं अपनी हार महसूस करता हूँ और
 आप हार कर भी खुश हैं ।

[महावत खाँ के अन्तिम वाक्य के साथ फेड आउट । फिर परछाँई के हास्य के साथ फेड इन ।]

परछाँई—हार कर भी खुश हा...हा...हा...हारकर भी खुश ।

नूरजहाँ—तुम हँस-हँस कर मुझे पागल कर दोगी । चली जाओ यहाँ से । मैं कहती हूँ चली जाओ यहाँ से । खुदा की इवा-
दत और शोहर मरहूम की याद में मुझे जिन्दगी के बाकी
दिन चैन से गुजारने दो ।

[परछाँई की हसी का स्वर काफी पास आता है, और फिर दूर होता हुआ पृष्ठभूमि में जाकर बिखीन हो जाता है ।]

वेला फूले आधीरात

[आल्हा-खंड पर आधारित नाटक]

[प्रारम्भिक संगीत के बाद दूर से शंख-ध्वनि स्वं घण्टे-घड़ियालों का स्वर । स्वर विलीन होने पर पृष्ठभूमि से प्रभात का आभास देना वाला पंछियों का कलरव । दूर से रूपा का स्वर पास आता है । वह गुनगुना रही है “बेला फूले आधी रात गजरा मैं किसके गले डालूँ, मैं किसके गले डालूँ ? हो, बेला फूले आधी रात ।” पास आकर स्वर रुक जाता है ।]

रूपा—आप यहां हैं, राजकुमारी जी ।

बेला—हां रूपा ! न जाने क्यों मन कई दिनों से उदास रहता है । कल रात भर नींद नहीं आयी । सोचा, उद्यान में ही चलूँ, कदाचित् प्रभात की शीतल वायु के मधुर स्पर्श से पीड़ा कुछ कम हो जाये ।

रूपा—यह तो ठीक है, राजकुमारी जी ! पर पर आप अभी सरोवर की लहरियों में किस समस्या का समाधान खोज रही थीं ?

बेला—(हंसकर) तुम्हें तो हर समय.....

रूपा—(बीच में ही) आपकी उदासी का कारण मुझ से छिपा नहीं है । पर अब तो चाँद से मुखड़े को मुस्कान की ज्योत्सना बिखेरनी चाहिये । अब उदासी का घटा का क्या काम ?

बेला—मैं समझी नहीं तेरी बात ।

रूपा—जब से महाराज ने आप का टीका भेजा है तभी से आप उदास हैं । होना ही चाहिये । महाराज ने राजकुमार ताहिर को आदेश दिया था कि भारत के किसी भी कोने में जायें पर महोबा राज्य की सीमा से दूर ही रहें । आपकी उदासी का यही कारण था न ? अरे ! आप तो फिर उदास हो गयीं ।

बेला—(आर्द्र स्वर में) रूपा ! तू जान-बूझ कर मन के घाव को क्यों कुरेदती है ? (सिसकी का स्वर)

रूपा—छिः छिः यह क्या कर रही हैं आप ! प्रवल पराक्रमी दिल्ली-पति महाराज पृथ्वीराज को पुत्री बेला की आंखों आँसू । नहीं, नहीं !! इन आँसुओं की बाढ़ में तो समस्त देश डूब जायेगा । आँसू पोंछ डालिये । मैं आपको शुभ समाचार सुनाने आयी हूँ ।

बेला—(उस्सुक तथा प्रसन्न स्वर में) क्या समाचार है ? शीघ्र बता । क्या ताहिर भैया ले आये ? क्या.....

रूपा—धैर्य रखिये, राजकुमारी जी । सब बताती हूँ । बात यह है कि राजकुमार ताहिर जहाँ-जहाँ गये वहाँ वहाँ के नरेशों ने टीका लेना अस्वीकार कर दिया । गीदड़ों में इतना साहस कहाँ कि सिंह की बेटी को व्याहने आयें ।

बेला—(धीमे स्वर में) यह क्या कह रही है तू ?

रूपा—ठीक कह रही हूँ, राजकुमारी जी । महाराज की कठोर शर्तें पढ़कर भुग्नागढ़, बौरीगढ़, नरवर, बूंदी, कन्नौज आदि के नरेशों ने टीका लौटा दिया ।

बेला—फिर...फिर क्या हुआ ?

रूपा—वही जो आप चाहती थीं । महोबे के जिस चन्देल राजकुमार के चित्र को राजकुमारी ने अपने हृदय पटल पर अंकित किया है उसी से भाँवरें पड़ेंगी अब ।

बेला—परिहास न कर, रूपा सच-सच बता, फिर क्या हुआ ।

रूपा—बता तो रही हूँ । राजकुमार ब्रह्मा दलबल सहित राजकुमारी बेला को व्याहने आ रहे हैं ।

बेला—(आशंका से) किंतु...किंतु पिता जी मानेंगे ? यदि युद्ध हुआ तो...। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है । रूपा ! भावी आशंका से काँपी जा रही हूँ ।

रूपा—आपकी शंका निर्मूल है। बारात के साथ पराक्रमी आल्हा, ऊदल भी आ रहे हैं। साथ में सिरसागढ़ के मलखान भी होंगे। मृत्यु को भी जीतने वाले इन तीनों योद्धाओं के होते राजकुमार ब्रह्मा का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। विश्वास रखिये ! दो-चार दिनों में आपकी डोलो महोबा जायेगी।

बेला—(लजाकर) हुश ! मैं...मैं...

रूपा—महोबा पहुँचकर इस दासी को न भूल जाइयेगा।

बेला—(गभीर स्वर में) रूपा ! तू मेरी दासी नहीं, अंतरंग सखी है। मैं तुझे अपने साथ ले चलूँगी।

रूपा—(प्रगल्भ स्वर में) सच ?

बेला—हाँ, किंतु यह तो बता कि तुझे यह सब ज्ञात कैसे हुआ ?

रूपा—उरई के राजा माहिल आये हैं। महाराज को वे बता रहे थे। मैंने छिप कर सुन लिया।

बेला—(हँसकर) यह तो बहुत बुरी बात है।

रूपा—(हँसकर) इसमें बुराई क्या है ? यह तो हम स्त्रियों का स्वभाव है।

[दोनों हँसती हैं।]

बेला—पिता जी ने क्या कहा ?

रूपा—क्रोध से पागल हो रहे हैं। राजा माहिल उनकी क्रोधाग्नि में धी का काम कर रहे हैं। महोबे वालों को बन्दी बनाने के लिए भाँति-भाँति की छल छद्म भरी योजनायें उन्हें सुझा रहे हैं।

बेला—(आश्चर्य तथा दुःख से) छात्र धर्म छोड़ कर पिता जी छल छद्म का आश्रय लेंगे ?

रूपा—राजा माहिल का कहना है कि चौहानों की कन्या चन्देलों के यहाँ जाने से चौहानों की नाक कट जायेगी। नाक का बचाने

के लिये धर्म-अधर्म का विचार नहीं है उन्हें । (हककर)
आप चिन्ता न करें, राजकुमारी जी ! छल-छद्म भरी गुप्त
योजनाओं का भेद मैं किसी न किसी प्रकार चन्देलों के पास
पहुँचा दिया करूँगी ।

[दूर से घोड़ों को टापों का स्वर आता है । स्वर पास आकर फिर
कुछ दूर जाता है और फिर रुक जाता है ।]

बेला—कदाचित भैया आ गये ।

रूपा—लगता तो यही है । चलिये हम लोग प्रासादमें चलकर महा-
राज और उनकी बातें सुनें ।

बेला—छिपकर ?

रूपा—(हसकर) तो क्या हुआ ? आइये ! शीघ्रता कीजिये ।

बेला—चलती हूँ ।

[क्षणिक विराम]

रूपा—(धीमे स्वर में) धीरे-धीरे आइये, राजकुमारी जी ! देखिये,
महाराज किस प्रकार क्रोध से लाल-पीले होकर कक्ष भर में
भूखे शेर की तरह घूम रहे हैं ।

बेला—(धीमे स्वर में) और भैया तो सिर झुकाये पत्थर की मूर्ति की
तरह खड़े हैं । सुन, भैया कुछ कहना चाहते हैं ।

ताहिर—अपराध के लिये क्षमा चाहता हूँ ।

पृथ्वीराज—मेरी मूर्छ नीची करके, नाक काट कर, चौहानों के कुल
में कलंक लगाकर अब क्षमा चाहता है तू ! दूर हो जा मेरी
आँखों के सामने से ।

ताहिर—किन्तु पिता जी, मैं विवश था । सिरसागढ़ के मलिखान ने
मुझे बन्दी कर लिया था ।

पृथ्वी—तुझे अपना पुत्र कहने में भी मुझे लज्जा आती है । बड़े-
बड़े हाथियों को भी पछाड़ देने वाले पृथ्वीराज का पुत्र
ताहिर बन्दी कर लिया गया था । धिक्कार है तुझ पर ।

अच्छा होता यदि मेरे सामने तू नहीं, तेरी लाश आती ।

ताहिर—(बिनीत स्वर में) जब मैं राजा परिमल के समक्ष ले जाया गया तब मैंने भरे दरवार में अपनी साँग गाड़ दी और कहा कि वेला का टीका तभी लिया जा सकता है जब राजकुमार ब्रह्मा मेरी साँग उखाड़ दें ।

पृथ्वी०—और तू यह कहना चाहता है कि उस छोंकर ने तेरी साँग उखाड़ दी ।

ताहिर—नहीं, पिता जी ! मेरी बात सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया । ऊदल आगे आया और बोला कि इस संवकों के होते हुये राजकुमार ब्रह्मा क्यों कष्ट करें । और.....इतना कह कर उसने मेरी साँग इस तरह उखाड़ दी जैसे कोई खेत से मूली उखाड़ता है । मैं वचन-बद्ध था, पिता जी ! मुझे टीका देना पड़ा ।

पृथ्वी०—चन्देलों के घर व्याहृति की अपेक्षा मैं वेला को जीवन भर क्योरी रखना अच्छा समझता हूँ । आने दो महोये वालों को । छठी का दूध याद न आजाये तो मेरा नाम पृथ्वीराज नहीं ।

ताहिर—व्यर्थ के लिये रक्त-पात करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ, पिता जी ! आल्हा-ऊदल से युद्ध करना खेल नहीं है । मेरा निवेदन है कि महोये वालों का दार्दिक स्वागत-सत्कार कीजिये और शुभ मुहूर्त में वेला का व्याह राजकुमार ब्रह्मा से कर दीजिये ।

पृथ्वी—(तोष में) तेरे शब्दों से कायरता की गन्ध आती है । जा, हाथों में चूड़ियाँ पहन कर रनिवास में छिप जा ।

ताहिर—(आवेग में) पिता जी ! आप मेरा अपमान कर रहे हैं । मेरी नसों में भी चौहानों का रक्त है । मृत्यु को मैं सदैव प्रेयसी मानता हूँ । पर.....मुझे अन्धी वीरता में विश्वास

नहीं। यह समय आपस में कटने-मरने का नहीं है। आज आवश्यकता है संगठन की, एकता की।

पृथ्वी०—क्या बक रहा है तू ?

ताहिर—आज आप इसे प्रलाप कह सकते हैं पर आने वाला कल यह सिद्ध कर देगा कि यही सत्य है। हम लोग तो आपसी वैमनस्य में मर मिटेंगे पर.....पर इसका फल भुगतना पड़ेगा हमारी सन्तानों को। (धीमे स्वर में) राजकुमार ब्रह्मा वीर हैं, सुन्दर हैं, स्वस्थ हैं। और क्या चाहिये आपको ? एक अच्छे पिता की भाँति बेटी के हाथ पीले करके अपने कर्तव्य को पूरा कीजिये।

पृथ्वी०—(चीककर) ताहिर ! मैं उपदेश सुनने का अभ्यस्त नहीं हूँ। युद्ध अवश्य होगा और युद्ध भी ऐसा होगा कि एक भी महोद्ये वाला जीवित बचकर नहीं जा सकता।

ताहिर—आपकी इच्छा। मैं आप का पुत्र ही नहीं, सेनापति भी हूँ। आप की हर आज्ञा शिरोधार्य होगी। विश्वास रखें, चन्देलों पर विजली बनकर टूटने वाली तलवारों में पहली तलवार मेरी होगी। (डूबे स्वर में) पर...पर...पर इतना मैं कहूँगा कि...कि...बेला की माँग को रक्त नहीं, सिन्दूर चाहिये।

पृथ्वी०—पागल। क्षत्रियों की माँग सिन्दूर से नहीं, रक्त से भरी जाती है। सेना को राज्य की सीमा पर तत्पर रखो, पक्की मोर्चाबन्दी हो, वारात का स्वागत फूल के हारों से नहीं, तलवारों की नागिनों से हो। समझे ! (दूर जाता हुआ स्वर) मैं जा रहा हूँ माहिल के पास (स्वर विलीन हो जाता है)

ताहिर—(स्वगत) अच्छा ! अब समझ में आया क्रोध का कारण।

यह आग दुष्ट माहिल की ही लगायी हुई है।

रूपा—हाँ राजकुमार ! राजा माहिल ने ही महाराज को भड़काया है।

ताहिर—अरे रूपा ! तू यहाँ कहाँ ? क्या छिप कर सुन रही थी ?
बेला कहाँ है ?

मालती—(ऊँचे स्वर में) आजाइये राजकुमारी जी !

ताहिर—क्या बेला भी सुन रही थी ?

बेला—(आर्द्र स्वर में) भैया ! (सिसकने लगती है)

ताहिर—रोती क्यों है, पगली ! रो मत ।

बेला—मेरे कारण रक्त-पात होगा, लाखों पत्नियों का सोहाग लुटेगा
वहनों के भाई छिनेंगे, माताओं की गोद सूनी होगी । (सिस-
कते हुये) भैया ! कितनी अभागिन हूँ मैं, कितनी अभागिन

ताहिर—होनों को कोई नहीं टाल सकता । मैंने पिता जी को बहुत
समझाया परन्तु भूटे मान ने उन्हें अन्धा कर दिया है ।
व्याह दो प्राणियों का ही नहीं, दो परिवारों, दो वंशों और
दो राज्यों का स्नेह बन्धन है । प्रीति-प्यार के इस बन्धन से
एकता के सूत्र को दृढ़ता मिलती है । परन्तु आज विपरीत ही
हो रहा है । बिना युद्ध हुये कोई व्याह होता ही नहीं । समझ
में नहीं आता क्या हाने वाला है । मुझे तो भारत का भवि-
ष्य अन्धकार पूर्ण ही लग रहा है ।

रूपा—अपराध क्षमा हो, राजकुमार । प्रीत प्यार की बात करते करते
आप राजनीति की बातें करने लगे ।

ताहिर—बेला का व्याह साधारण व्याह नहीं, अत्यन्त राजनैतिक
महत्व का है । यदि यह व्याह शान्ति पूर्वक हो जाये तो
भारत की दो महान शक्तियाँ एक हो जायें और...और फिर
देश में ऐसे दृढ़ राज्य संघ की स्थापना हो जाये कि भूलकर
भी वे विदेशी इधर आँख न उठायें जो आज बाज़ की तरह
आक्रमण करने की घात में बैठे हैं । (निःश्वास छोड़ कर)
किन्तु लगता है मेरा स्वप्न स्वप्न ही रहेगा ।

बेला—(भीगे स्वर में) सारे अनर्थ की जड़ मैं ही हूँ, भैया। अपने हाथों से मेरा गला घोट दीजिये। फिर... फिर... यह भयंकर रक्त-पात न होगा, न होगा।

ताहिर—वहिन का गला चोटने की शक्ति मेरे हाथों में नहीं है, बेला। तू दुखी न हो। राजकुमार ब्रह्मा के प्रति तेरे अनुराग की बात मुझ से छिपी नहीं है। विश्वास रख। तेरा व्याह ब्रह्मा से हो होगा। (दूर जाना स्वर) चलता हूँ अब ! सेना को कूच करने का आदेश देता है।

बेला—अनुराग की बात भैया से तूने ही कही होगी।

रूपा—न कहती तो काम कैसे बनता ? राजकुमार सब कुछ जानते

थे तभी तो मलिखान के हाथों बन्दी हो गये।

बेला—पर... पर... तूने भैया से कह कर अच्छा नहीं किया, रूपा !

रूपा—पुरस्कार देने के स्थान पर आप मुझे दोष दे रही हैं। वाह, राजकुमारी जी। कान पकड़ती हूँ। अब ऐसे परोपकार को दूर से ही नमस्कार किया करूँगी।

[रूपा हँसती है। बेला भी हँसने लगती है। पर उनकी हँसी में उदासी है। दोनों की सम्मिलित हँसी के साथ पूर्ण फेड़ जा उठ।]

अन्तराल के बाद

[दूर से तोते चकने का स्वर आता है। फिर अपेक्षाकृत पास से कोलाहल घोष, अस्त्र-प्रस्थ चकने का स्वर।]

रूपा—वह देखिये, राजकुमारी जी, दुर्ग के द्वार पर कैसा भीषण संग्राम हो रहा है। सामने ही जो दो योद्धा विद्युत् वेग से तलवार चला रहे हैं वे ऊदल और मलिखान हैं। अपने सैनिकों के पैर उखड़ रहे हैं।

बेला—भैया किधर हैं ? दिखाई नहीं देते।

रूपा—वे क्या हैं पूर्व की ओर । साक्षात् रुद्र का रूप धारण कर युद्ध कर रहे हैं । यह तो । द्वार टूट गया ।

[बोयादिक समीप आता है।]

रूपा—उधर देखिये । वे राजकुमार ब्रह्मा हैं । साक्षात् कामदेव के अवतार हैं । भगवान ने आप दोनों का एक दूसरे के लिये बनाया है । ऊदल, मालिखान जर्गनिक, देवा, आदि उनके चारों ओर व्यूट बनाकर प्रासाद को आर वढ़ रहे हैं ।

बेला—पिता जो उन्हें रोकने की चेष्टा कर रहे हैं ।

रूपा—आँवों के पैग को कोई नहीं रक सकता । देखिये वे प्रासाद के अन्दर आ गये । चालिये अब मंडप के नीचे ।

बेला—तेरा उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगी रूपा ! यदि तूने सहायता न की होती तो...तो न जाने क्या हो जाता ।

रूपा—होता क्या, जल में मिले विष के प्रभाव से सब लोग समाप्त हो गये होते । राजा माहिल ने ही कुँआरों में विष डलवाया था । मुझे तो बहुत क्रोध आता है उन पर ।

बेला—अपने प्राणों को संकट में डालकर तूने उन लोगों को समय पर सूचित कर दिया अन्यथा माहिल की कुटिल योजना सफल हो गयी होती और...

ऊदल—(दूर से) राजकुमारी को मंडप में शीघ्रता से ले आओ । भाँवरों का शुभ मुहूर्त निकला जा रहा है ।

रूपा—(धीमे स्वर में)यह ऊदल का स्वर है । चलिये, राजकुमारी जी ।
[क्षणिक विराम]

ऊदल—महाराज ! कन्या दान के लिये तत्पर हो जाइये ।

पृथ्वी०—(तीखे स्वर में) मैं चन्देलों को कन्या दान करूँगा ? कभी नहीं ।

दल—हमारे महाराज के समथो होने के नाते आप हमारे पूज्य हैं, इसलिये मैं अशिष्टता नहीं करना चाहता । पर हाँ,

इतना अवश्य कहूँगा कि हम आप की भाँति कन्या हरण करने वाले नहीं हैं। हम वरण करने आये हैं और वरण करके ही जायेंगे।

ताहिर—भूटा अभिमान छोड़ दोजिये, पिता जी ! पराजित हो चुके हैं।

पृथ्वी०—पृथ्वीराज कभी पराजित होना नहीं जानता। (द्रुता में) मैं कन्या दान नहीं करूँगा। और...और न उसकी माँ ही करेगी।

ब्रह्मा—(क्रोध से) चन्देले दान लेना नहीं, देना जानते हैं।

ऊदल—आप शान्त रहें, राजकुमार ब्रह्मा ! रस्सी जल जाती है पर एँठन नहीं जाती। राजकुमार ताहिर ! आप ही समझाइये महाराज को।

ताहिर—पिता जी। यमुना का जल शोणित की धार से लाल हो रहा है, नगर के पथों पर रुड मुंड ही दिखाई देते हैं। इतने रक्त-पात के बाद भी आप अपनी जिद्द पर अड़े हैं। पराजित हो कर भी आप पराजय स्वीकार नहीं करते।

पृथ्वी०—(तेज स्वर में) चुप रह कायर। (दूर जाता हुआ स्वर) अच्छा होता यदि तू जन्म लेते ही मर गया होता।

ताहिर—मैं बेला से बड़ा हूँ। कन्यादान में करूँगा, आप लोग चिन्तित न हों।

[क्षणिक विराम]

[पृष्ठभूमि से मंगल वाद्य का स्वर उभरता है]

पृथ्वी—(रुहमे समीप आता हुआ क्रुद्ध स्वर) वन्द करो यह मंगल वाद्य। (पास आकर) मेरे कान युद्ध-घोष युतना चाहते हैं।

ताहिर—पिताजी ! विवाह संस्कार पूरा हो चुका है। अब विदा की तैयारी कीजिये।

पृथ्वी०—विदा, कैसी विदा ?

ताहिर—मैं कन्यादान कर चुका हूँ, भाँवरें पड़ चुकी हैं, राजकुमार ब्रह्मा अपनी उँगली के रक्त से बेला की माँग भर चुके हैं। अब भी आप सत्य को स्वीकार करने में आना-कानी कर रहे हैं।

पृथ्वी०—तुम दोनों ही चौहान वंश के कलंक हो। तूने बेला को सौभाग्य दिया है पर मैं...मैं उसे बंधव्य दूँगा। (तेज स्वर में) चंदेल छोकरे ! सावधान मेरी चोट बचा।

[तलवार के चार को ढाल पर रोकने की ध्वनि। साथ ही बेला और ब्रह्मा की धीमी चीखें।]

ऊदल—(कुद्र स्वर में) राजकुमार ब्रह्मा पर आघात करने की क्षमता रखने वाली तलवार का अभी निर्माण ही नहीं हुआ है। उनके अंग का स्पर्श वही तलवार कर सकती है जो पहले मेरी ढाल काट दे।

पृथ्वी०—छोटे मुँह बड़ी बात न कर छोकरे ! ले, पहले तुम्ही को समाप्त करता हूँ।

बेला—(तेज स्वर में) पिता जी, आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं। अब मैं चौहानों की बेटी नहीं, चन्देलों की बहू हूँ। यदि आप की तलवार रक्त की ही प्यासी है तो उसकी प्यास मेरे रक्त से बुझाईये।

होपृथ्वी०—ऐसा ही गा।

ताहिर—पिता जी, मुझे विद्रोह करने पर बाध्य न कोजिये। बेला पर उठने वाला हाथ पृथ्वी पर लोटने लगेगा, मैं कहे देता हूँ।

ऊदल—महाराज ! व्यर्थ मैं वाद-विवाद करने से कोई लाभ नहीं है। उचित यही है कि आप बेला रानो को विदा कर दें।

पृथ्वी०—विदा अभी नहीं होगी। यदि बेला को ले जाने की शक्ति है तो फिर कभी गौना लेने आना।

ब्रह्मा—यदि आपकी युद्ध-विश्वासा शान्त नहीं हुई है तो यही सही। हम शीघ्र ही गौना लेने आयेंगे। चलो ऊदल !

पृथ्वी०—इस बार भाग्य ने तुम्हारा साथ दिया, अगली बार हमारा साथ दगा। अच्छा होगा यदि तुम लोग सहोदरे से अन्तिम विदा लेकर आओ।

ब्रह्मा—हम भाग्य पर नहीं, तजवार पर विश्वास करते हैं, महाराज ! हम फिर आयेंगे और तब हमारे साथ बेला का डोला भी जायेगा। (एक कर) हम जा तो रहे हैं पर इतना ध्यान रहे कि बेला हमारी थाती है। यदि इसका कुछ भी अनिष्ट हुआ तो दिल्ली की ईट-ईट बजा देंगे।

पृथ्वी०—दिल्ली की ईट मिट्टी की नहीं, लोहे की हैं। विश्वास रखो हम स्वागत के लिये इस बार पूरी तरह तैयार रहेंगे।

ऊदल—चलिये राजकुमार ! हम शब्दों से अधिक शस्त्रों पर निर्भर रहते हैं।

[कई भारी पदचापें दूर जाकर विग्रीन हो जाती हैं। पृथ्वीराज की भयंकर हंसी और बेला की दबी भिमक्रियों के मध्या पूर्ण फेड आउट।]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठभूमि से बादलों की गरज के साथ-साथ विजली की कड़क।

अपेक्षाकृत समीप से पपीहे का स्वर।]

बेला—रूपा ! इस निगोड़े पपीहे को उड़ा तो दे।

रूपा—बैठा रहने दीजिये, राजकुमारी जी ! विचारा अपने प्रिय को पुकार रहा है।

बेला—(रुखी स्वर में) और मेरे हृदय पर तीर चला रहा है।
(पपीहे का स्वर) मुझ से अच्छा तो यह पंखी है जो खुलकर

अपने प्रिय को पुकार तो सकता है । (निःश्याम छोड़कर)
परन्तु मैं, मेरे मुख पर लज्जा के ताले पड़े हैं, स्वर पर
स कोच का पहरा है । (रुककर) कितना करुण होता है
नारी का जावन ! नारी वह भो राजकुमारी । काश ! मैं
एक साधारण लड़की हूँ, किसी निर्धन की भोंपड़ी में
जन्मी होती ।

रूपा—यह क्या कह रही हैं आप, राजकुमारी जी !

बेला—मैं थक गयी हूँ राजकुमारी सुनते सुनते । क्या राजकुमारियाँ
नारी नहीं होतीं ? क्या उनके हृदय में मानवीय भावनायें
नहीं होती ? (आवेग से) मैं पूछती हूँ, क्या राजकुमारियों का
जन्म इसीलिये होता है कि उनके लिये युद्ध हों, भयंकर नर
संहार हों, भीषण रक्तपात हों ? (गंभीर से) कर्तव्य और
प्यार की खींचातानी में बिखरने के लिये ही क्या उनके हृदय
का निर्माण होता है ।

रूपा—आप अस्वस्थ विदित होती हैं.....

[पपीहे का स्वर]

बेला—फिर बोला तू ! अरे पापी, यदि बोलना ही है तो जाकर
महोबे में बोल ! “पी कहाँ” “पी कहाँ” पुकार से मेरे प्रिय
को याद दिलादे कि मन हो मन उनको रट लगाने वाली
कोई विचारी उनकी प्रतीक्षा में वर्ष भर से पथ में पलकें
बिछाये बैठी हैं । (पपीहे का स्वर) उड़जा बावरे, और राज-
काज में व्यस्त कान्हा को वियोगिनी राधा को सुधि दिलादे ।

रूपा—(प्रसन्न स्वर में) पपीहा उड़ गया, राजकुमारी जी ! निश्चय
ही वह महोबा जाकर आपका सन्देश राजकुमार ब्रह्मा से
कहेगा ।

बेला—काश ! जो तू कहती है उस पर मेरा मन विश्वास कर
सके ! रूपा ! जिस क्षण से वे पीठ दिखा कर गये हैं

उस क्षण से आज तक उनका मुख देखने के लिये तरस रही हूँ। न जाने किस दुर्वाशा का शाप लगा है मुझे जो वे दुष्यन्त की तरह अपनी शकुन्तला को भूल बैठे हैं, न जाने किस राहु ने मेरे भाग्य-चन्द्र को ग्रस लिया है।

रूपा—हतारा न हों आप। भगवान की कृपा से वे शीघ्र ही आयेंगे।

ताहिर—(दूर ने पाम हुआ स्वर) वेला ! वेला !! (पाम आकर) अरे तुम तो उदास बैठी हो। मैं तुम्हारे लिये शुभ समाचार लाया हूँ।

वेला—(कहण स्वर में) भैया।

ताहिर—राजकुमार ब्रह्मा राजा माहिल के साथ गौना लेने आये हैं।

रूपा—राजा माहिल के साथ...? क्या आल्ह-ऊदल गात्र नहीं आये ?

ताहिर—नहीं ! इस बार राजा माहिल ने जो कुछ किया है उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, उनके प्रति मेरा सारा क्रोध धुल गया है।

रूपा—ऐसा कौन सा शुभ कार्य कर डाला है उन्होंने, राजकुमार जी ?

ताहिर—उन्होंने पिता जी को बिना युद्ध किये गौना देने के लिये सहमत कर लिया है। (दूर जाता हुआ स्वर) कल प्रातः काल शुभ मुहूर्त में हमारी वेला का डोला मँजवा जायेगा।

रूपा—अब तो हँस दीजिये, राजकुमारी जी ! आँर हाँ, आपने मुझे भी साथ ले चलने का वचन दिया था ! याद है न। अरे, यह क्या ? आपकी आँखों में आँसू क्यों ?

वेला—यह आँसू दुख के नहीं, दर्ष के हैं पगली। अभी तक अधरों पर सिसकता हुई मुस्कान रहता था, अब आँखों में मुस्कराते हुये आँसू हैं।

रूपा—(हँस कर) राजकुमारी जी, अब आप विश्राम कीजिये। कल प्रातः काल ही लम्बी यात्रा करनी है।

बेला—आज की रात सोने के लिये नहीं, जागने के लिये है रूपा !
(पृष्ठभूमि से उल्लू का स्वर) यह क्या ? रूपा ! यह भयंकर
स्वर किस पक्षी का है ? मुझे तो भय लग रहा है ।

रूपा—उल्लू से डर गयीं आप ?

बेला—उल्लू का बोलना तो अशुभ होता है, रूपा ! मेरी दाहिनी
आँख फड़क रही है । (घबराये स्वर में) क्या होने वाला है ?
ये अपशकुन क्यों हो रहे हैं ?

रूपा—अपशकुनों पर विश्वास करना ठीक नहीं, राजकुमारी जी !
रात अधिक हो गयी है । अब आप सो जाइये ।

[पृष्ठ-भूमि से चिल्ली - राजा का स्वर आता है ।]

बेला—देख तो चिल्ली कहाँ रो रही है । (कमरे के जोंर में गिरने
की आवाज) रूपा ! देख तो क्या गिराया है निगोड़ी
चिल्ली ने ।

रूपा—(दूर से) इसी कक्ष में थी चिल्ली (पास आकर) मैंने
भगा दिया है ।

बेला—क्या गिराया था उसने ?

रूपा—(रुक रुक कर) आपका श्रृंगार दान ।

बेला—मेरा श्रृंगार दान ! (घबराये स्वर में) रूपा ! यह सब क्या हो
रहा है ? कहीं...कहीं...उन्हें अकेले लाकर राजा माहिल ने
किसी षडयन्त्र की रचना तो नहीं की है !

रूपा—ऐसी शंका न कीजिये, राजकुमारी जी !

बेला—विना युद्ध किये डोला भेजने के लिये पिता जी का सहमत
हो जाना भी कम आश्चर्य की बात नहीं है । रूपा, विश्वास
मेरा साथ छोड़ता जा रहा है ।

[दूर से तीव्र गति से घोड़े की टापों का स्वर मधीम आता है]

रूपा—राजकुमार ताहिर बहुत घबराये से लग रहे हैं । वे इधर ही
आ रहे हैं । पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं । (ताहिर की भारी पद

चाप समीप आती है)आप स्वस्थ तो हैं राजकुमार जी ?

ताहिर—(भारी कंठ से)बेला ! सर्वनाश हो गया ।

बेला —(कम्पित स्वर में)भैया ! क्या हुआ ? क्या फिर युद्ध की...

ताहिर—(वीच में ही)युद्ध अब किसके लिये होगा ? (हृदय कंठ से)

बेला ! दुष्ट साहिल ने अपनी नीचता दिखा दी ।

रूपा—(घबरा कर)राजकुमार ब्रह्मा सकुशल तो हैं ?

ताहिर—कैसे कहूँ, क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता ।

बेला—(दूरे स्वर में)दुष्ट साहिल के द्वारा उनका कुछ अहित हुआ है ?

ताहिर—(हृदय कंठ से)कुछ अहित नहीं, बेला ! बहुत बड़ा अहित हुआ है । उस पापा ने...तुम्हारा...सौभाग्य...दीप बुझा दिया है ।

[बेला की धीपी चीन्च और फिर निमकियों की आवाज । पृष्ठ-भूमि में कल्या संगीत-ध्वनि ।]

रूपा—यह क्या कह रहे हैं आप ?

ताहिर—ठीक कह रहा हूँ, रूपा मैं ठीक कह रहा हूँ । उसके कहने से दुष्ट चौड़ा ने राजकुमार ब्रह्मा के वक्षस में खंग भोंक दिया है ।

[बेला को निमकिया तीव्रतर हो जाती है । दूर से पृथ्वीराज का अट्टहास पास आता है ।]

ताहिर—अपनी वहन का सोहाग लूटने वाले तुमों के रक्त से जब तक मेरी तलवार स्नान न कर लेगी तब तक मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी ।

पृथ्वी—चौहानों की बेटी को व्याह कर ले जाने की इच्छा रखने वाले नीच चन्देलों का सर्वनाश किये बिना मेरे धनुष की प्रत्यंचा नहीं उतरेगी । तू रो रही है, पृथ्वीराज की बेटी आँसू बहा रही है । तुम्हें तो हँसना चाहिये, प्रसन्न होना चाहिये

ताहिर—(कठोर स्वर में) पिता जी ! आपकी राजनीति और झूठे अभिमान ने आपको मनुष्य से पशु बना दिया है ।

पृथ्वी०—(चीखकर) ताहिर ! क्रोध अन्या होता है । मेरा बाण पुत्र शत्रु में कोई भेद नहीं मानता ।

ताहिर—मेरा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि मैं आपका पुत्र हूँ । अपनी बेटी के लोहाग की हत्या करके भी जो हँस सकता है वह पिता नहीं, पत्थर है । (दूर जात हुआ स्वर) ऐसे पत्थर को पिता कहने से पहले मैं मर जाना पसन्द करूँगा ।

पृथ्वी०—(तेज स्वर में) ताहिर ! तू पिता से नहीं, दिल्लीपति से विद्रोह कर रहा है । इसका फल तुझे भुगतना पड़ेगा । (दूर जात हुआ स्वर) मेरा विरोध करके कोई जीवित नहीं रह सकता ।

[पृथ्वी-भूमि का कवच खीन कर उभरता है ।]

बेला—(मिमकते स्वर में) अच...अच...जीवित...रहना ही कौन चाहता है । (चूड़िया खोजने की ध्वनि) यह चूड़ियाँ मुझे नागिन बनकर डस रही हैं । और...और...माँग में यह सिन्दूर की लाली... । तू भी जा... ।

रूपा—(सिसकते हुए) राजकुमारी जी !

बेला—जाकर उल्लू से कह दे कि अच जी भरकर बोले ! और... और उस बिल्ली को फिर ला ! वह भी राते जी भर कर । सब रोयें ! तू भी रो रूपा... ! तू भी रो... ! और मैं...मैं कैसे रो सकती हूँ ! मैं तो राजकुमारी हूँ, दिल्लीपति की बेटी हूँ... । मैं नहीं रोऊँगी...मैं...नहीं रो...ऊँ...गी... ।

रूपा—यह क्या, राजकुमारी जी ! आप इस तरह भूम क्यों रहीं हैं । आपकी आँखें वन्द क्यों हुई जा रहीं हैं ? अरे...! आप तो मूर्च्छित हो गयीं । (ऊँचे स्वर में) अरे रेखा, रेवती, चम्पा,

कामिनी ! कहाँ हो सब शीघ्र आओ ! राजकुमारी मूर्च्छित हो गयीं हैं ।

[रूपा के अन्तिम वाक्य तथा कई व्यक्तियों के दौड़कर पास आने-की ध्वनि के साथ ही पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

रूपा—मैं फिर कहती हूँ, राजकुमारी जी, कि आपने ऊदल को पत्र लिखकर अच्छा नहीं किया ।

बेला—अज्झा बुरा समझने का ज्ञान मुझ में है । मैंने जो कुछ किया है, सोच समझ कर किया है ।

रूपा—यदि उन्हें आना होता तो कभी के आ गये होते ।

बेला—यदि मेरा पत्र पढ़कर भी वे नहीं आते तो मैं समझूँगी कि वे क्षत्रिय नहीं, कायर हैं, पुरुष नहीं, स्त्री हैं । रूपा ! मुझे पूरा विश्वास है कि वे अवश्य आयेंगे और मेरा डोला महोबे ले जायेंगे ।

रूपा—अपराध क्षमा हो तो मैं एक बात पूछूँ ।

बेला—पूछ ।

रूपा—आप महोबे क्यों जाना चाहती हैं ?

बेला—नारी ससुराल क्यों जाती हैं ?

रूपा—परन्तु आप

बेला—(बीच में ही) पर मेरा सोहाग तो उजड़ चुका है, तू यही कहता चाहती है न ! (निःश्वास छोड़ कर) मेरे लिये अब दिल्ली और महोबे में कोई अन्तर नहीं । फिर भी मेरे प्राण महोबा पहुँचने के लिये व्याकुल हो रहे हैं । (हक कर) तू इस-का कारण जानना चाहती है । सुन ! पति की मृत्यु के बाद भारतीय नारी का जीवन जीवित मृत्यु बन जाता है । सती हो कर ही वह इस भयंकर नरक से मुक्ति पा सकती है । मैं सती

होना चाहती हूँ, पर दिल्ली में नहीं, महोबे में, अपने प्रियतम के देश की पावन भूमि में। समझी ?

रूपा—परन्तु

बेला—परन्तु कहने का तो तेरा स्वभाव बन गया है। जब मैंने राजप्रासाद त्यागकर इस देवालय में रहने का निश्चय किया था तब भी तूने परन्तु की झड़ी लगा दी थी।

[दूर से घोड़ों की टापों का स्वर पास आकर रुक जाता है]

बेला—कौन हैं ये लोग ?

रूपा—सैनिक होंगे !

ऊदल—(दूर से) रात भर यहीं विश्राम किया जाये। बहुत मनोरम और शान्त स्थान है।

रूपा—(धीमे स्वर में) यह स्वर तो ऊदल का लगता है।

बेला—(धीमे स्वर में) ऊदल यहाँ कहाँ ? तेरा भ्रम है।

ऊदल—(दूर से) समय काटने के लिये आओ चौसर ही खेलें। लो, पहला पाँसा मैं फेंकता हूँ। यदि बेला रानी सचची सती हैं तो पाँसा मेरा ही पड़ेगा। (अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में) देखो पाँसा मेरा ही पड़ा।

बेला—(धीमे स्वर में) मेरा नाम लेकर पाँसा फेंकने वाला कौन सैनिक है। पूछ तो, रूपा !

रूपा—(ऊँचे स्वर में) राजकुमारी बेला का नाम लेकर पाँसा फेंकने वाला सैनिक कौन है ?

ऊदल—(ऊँचे स्वर में दूर से) हम गाँजर देश के साधारण सैनिक हैं। महाराज ने हमें अपनी सेवा में रक्खा है।

रूपा—(धीमे स्वर में) राजकुमारी जी ! मैं हाथ मार कर कहती हूँ कि यह स्वर ऊदल का ही है। (ऊँचे स्वर में) राजकुमारी

बेला के सामने झूठ बोलने वाले का दुस्साहस करने वाले को कठोर दंड दिया जाता है ।

ऊदल—(अपेक्षा-कृत पाम में) क्या बेला रानी अन्दर हैं ?

रूपा - हाँ ! अब आप अपना सही परिचय दीजिये ।

ऊदल — (हक कर) यदि वास्तव में बेला रानी अन्दर में तो वे मुझे जान लेंगे । मैं वही हूँ जिसे उन्होंने पत्र लिखकर बुलाया था ।

रूपा - हमें कैसे विश्वास हो कि आप वही हैं ।

ऊदल—द्वार खोल दीजिये । हम अन्दर आकर विश्वास दिला देंगे ।

रूपा — (धीमे स्वर में) द्वार खोल दूँ, राजकुमारी जी ?

बेला—(धीमे स्वर में) अभी नहीं । उनसे मेरा पत्र माँग !

रूपा—द्वार अभी नहीं खुलेगा । क्या आपके पास राजकुमारी का पत्र है ?

ऊदल - हाँ । यह लीजिये । मैं द्वार के नीचे से उल रहा हूँ ।

रूपा—(धीमे स्वर में) पत्र तो आपका ही है । खोल दूँ द्वार ?

बेला—(धीमे स्वर में) पूछ, साथ में और कौन है ?

रूपा—आपके साथ और कौन है ?

ऊदल —कन्नाज के राजकुमार लक्ष्मणसिंह । द्वार शीघ्र खोलिये । हम प्रातः होने से पहले दिल्ली राज्य सीमा से बाहर निकल जाना चाहते हैं ।

[द्वार खुलने की आवाज]

ऊदल—आपके मुख पर अवगुंठन क्यों, बेला रानी ! आप मेरी माँ के समान हैं ।

बेला—(निमकत हुये) यदि ऐसा हो होता तो स्वयं चूड़ी पहनकर उन्हें अकेला ही जूझने के लिये दुष्ट माहिल के साथ क्यों भेज देते ।

ऊदल—उसमें मेरा कोई दोष नहीं, रानी माँ ! आपका गौना लाने का बाड़ा मैंने ही उठाया था परन्तु...माहिल के भड़काने पर

राजकुमार ब्रह्मा ने वीड़ा वापस ले लिया। नीच कह कर हमारा अपमान किया।

बेला—और उस अपमान का प्रतिशोध लेने तुम तब आये हो जब अपमान करने वाला ही नहीं रहा। (गला रुद्ध हो जाता है)

ऊदल—ऐसा न कहिये, रानी माँ ! राजकुमार ब्रह्मा सकुशल हैं।

बेला—(प्रसन्न स्वर में) सच...? मैं...मैं... सपना तो नहीं देख
रूपा—तू खड़ी खड़ी क्या देख रही है। साहाग की चूड़ियाँ
ला, सिन्दूर दानी ला, शृंगार दान ला।

रूपा : राजकुमार ताहिर ने तो.....

ऊदल—चौड़ा के आघात से वे बहुत बुरी तरह घायल हो गये थे। वह उन्हें मृत समझ कर भाग आया। कई दिनों के निरन्तर उपचार के बाद राजकुमार को चेतना आयी। अब भी जीवन और मृत्यु का संघर्ष चल रहा है। रानी माँ ! देश करने का समय नहीं है। नगर के बाहर हमारे सैनिक प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आप हमारे साथ इसी समय चलने का कष्ट करें।

बेला—इस तरह भागकर मैं आपके साथ जाऊँगी तो चौहान वंश पर कलंक लग जायेगा।

ऊदल—आप राजकुमार लक्ष्मण सिंह के साथ चलें तब तक मैं दिल्ली पति को चेतावनी देने जाता हूँ।

बेला—चेतावनी का अर्थ होगा युद्ध।

ऊदल—हम युद्ध के लिए तैयार होकर आये हैं।

बेला—पर मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण अब और रक्तपात हो।

ऊदल—फिर क्या आदेश है ?

बेला—कुछ समझ में नहीं आता।

रूपा—आप इनके साथ जायें, राजकुमारी जी ! मैं कल प्रातःकाल

महाराज को सूचना दे दूँगी। तब तक आपका डोला बहुत दूर निकल जायेगा।

बेला—पर...पर.....तू साथ नहीं चलेगी मेरे ?

रूपा—यदि जीवन रहा तो फिर कभी आजाऊँगी। आप देर न करें ! एक-एक पल बहुमूल्य है।

ऊदल—आपको घोड़े की सवारी तो आती ही होगी, रानी माँ ?

बेला—हाँ।

ऊदल—हमारे तीन घोड़े हैं। नगर की सीमा तक आपको घोड़े पर चलना होगा। फिर डोले पर। चलिये !

बेला—अभी चलती हूँ। पहले माँग तो भर लूँ। (रुक कर) अब मैं तैयार हूँ। रूपा ! (भरे कण्ठ में) मैं जा रही हूँ। मैं...।

रूपा—यह क्या, राजकुमारी जी ? जाते समय आँखों में आँसू नहीं अधरों पर मुस्कान होनी चाहिये। जाइये। आपकी यात्रा मंगलमय हो। मैं...मैं शीघ्र ही आप की सेवा के लिये आजाऊँगी।

ऊदल—देरी न कीजिये, रानी माँ ! (दूर जाता हुआ स्वर) आइये।

[घोड़े की टापों का स्वर दूर जाता है। विलीन होकर स्वर पुनः उभरता है और पास आता है।]

ऊदल—सामने जो छोटी पहाड़ी दिखाई दे रही है उसी के पीछे राजकुमार ब्रह्मा का शिविर है।

बेला—तब तो हम पहुँच ही गये। कहाँ से अपनी गति तीव्र करने के लिये कहो !

ऊदल—अपना गति में विजली भर लो, साथियो !

बेला—तुम्हारा घाव कैसा है ?

ऊदल—साधारण है। (रुक कर) लगता है रूपा ने प्रातः होने से पहले ही आपके पिता को सूचना दे दी थी।

बेला—ऐसा नहीं हो सकता। मुझे रूपा पर पूरा विश्वास है।

पिता जी को किसी अन्य सूत्र से पता लग गया होगा ?

ऊदल—हो सकता है, किन्तु फिर भी उनकी डोला रोकने की सभी चेष्टायें असफल रहों। उन्हें इस बार भी मुँह की खानी पड़ी। (रुक कर) सँभाल कर साथियो ! सामने ढाल है। वह देखिये, रानी माँ ! असंख्य शिविरों के मध्य में जो सब से बड़ा शिविर है उसी में राजकुमार हैं ?

बेला—वह जिसके ऊपर पताका फहरा रही है ?

ऊदल—हाँ ! यह लो, हम आ गये।

[समीप ही कई लोगों के सम्मिलित स्वर, धोदो का हिनहिनाना आदि ।]

ऊदल—शिविर में राजकुमार अकेले ही हैं। आर अन्दर जाय, रानी माँ !

बेला—और तुम... ? तुम भी आओ मेरे साथ !

ऊदल—जो आज्ञा।

बेला—(धीमे स्वर में) यह तो सो रहे हैं ! (दुखी स्वर में) कितने दुर्बल हो गये हैं।

[ब्रह्मा के कराहने का स्वर, फिर बहुत धीमे स्वर में 'बेला', 'बेला' की पुकार ...]

बेला—मैं आ गयी, नाथ !

ब्रह्मा - (चौककर) तुम.....कौन हो तुम ? और तुम... ? तुम... कौन हो... ऊ...द ल... !

ऊदल—हाँ राजकुमार ! मैं ऊदल हूँ।

ब्रह्मा—(धीमे स्वर में) ऊदल ! यह !

बेला—मैं आपके चरणों की दासी बेला हूँ ! (दुखी स्वर में) क्या भूल गये मुझे, नाथ ?

ब्रह्मा—(धीमे स्वर में) बे.....ला..... ! दूर हो जाओ मेरी आँखों के सामने से। (कराह) मैं...मैं...तुम्हारा मुख नहीं

देखना चाहता । (कराह)

बेला— (सिसकते हुये) मेरा अपराध क्या है, स्वामी, जो मुझे इतना कठोर दण्ड दिया जा रहा है ?

ब्रह्मा— (दृष्टे स्वर में) तुम्हारा अपराध ...! तुम...तुम... नीच पृथ्वीराज की बेटी हो..... ।

बेला—नहीं ! कदाचित नारी होना ही मेरा सब से बड़ा अपराध है ।
(रुद्ध कंठ से) तभी तो पिता भी शत्रु हैं और...और पति भी आँखें फेर रहा है । पिता और पति के संघर्षों की चक्की में पिसने वाली अभागिन पुत्री और पत्नी... (सिसकती है) न मुझे नैहर में स्नेह मिला और न पीहर में प्यार ।

ऊदल—रानी माँ ।

बेला—मेरा अनादर कराने के लिये ही मुझे लाये थे यहाँ ? पति की उपेक्षा से अच्छी तो मृत्यु है । अब मैं जो कर क्या करूँगी ?

ऊदल—यह क्या कर रही हैं आप, रानी माँ ? कटार मुझे दीजिये । राजकुमार ! आपने बेला रानी को पहचानने में भूल की है ।

ब्रह्मा—(धीमे स्वर में) छल...मुझे छल से आहत किया गया । स्त्री का वेश धारण करके चौड़ा ने आह...मेरे हृदय में खंग भोंका... ! प्रतिशोध ...प्रतिशोध की आग में मेरा रोम-रोम जल रहा है । बेला... ! यदि...यदि...(कराह) यदि मुझे पाना चाहती हो तो ...तो...कपटी ताहिर को बन्दी बना कर मेरे सामने लाओ ।

बेला—(व्याकुल स्वर में)यह क्या कह रहे हैं आप ? भैया ताहिर कपटी नहीं हैं, आपको धोखा हुआ है ! ...वे...वे...

ब्रह्मा—(बीच में ही) जाओ ...चली जाओ । मेरा जीवन प्रिय है तो ...तो ताहिर को लाओ ...शृंखलाओ से जकड़ कर...जाओ

...जा...ओ ।

[ब्रह्मा का स्वर टूट जाता है । बेला भिसकने लगती है ।]

ऊदल—राजकुमार आवेश के कारण मूर्छित हो गये हैं । रानी माँ, साहस से काम लीजिये ।

बेला—(भिसकते हुये) साहस...हाँ...तुम ठीक कहते हो । (संयत होकर) मैं साहस से ही काम लूँगी । सेना को कूच करने की आज्ञा दो ।

ऊदल—(आश्चर्य से) रानी माँ !

बेला—मेरी ओर इस तरह आश्चर्य से क्यों देख रहे हो ? मुझे अपने पति का जीवन प्रिय है । मैं दिल्ली जाऊँगी और भैया ताहिर को वन्दी करके लाऊँगी ।

ऊदल—हम लोग भी साथ चलेंगे ।

बेला—नहीं । मेरे साथ केवल सेना रहेगी । सेना का संचालन मैं करूँगी ।

ऊदल—किन्तु...

बेला—मैं क्षत्राणी हूँ, ऊदल ! सेना को कूच की आज्ञा दो । अपने स्वामी के घोड़े पर उनकी ढाल तलवार लेकर मैं जाऊँगी । मेरे लिये पुरुष के वस्त्रों का प्रबन्ध कर दो ।

ऊदल—(धीमे स्वर में) जो आज्ञा, रानी माँ । (दूर जाता हुआ स्वर) मैं अभी सब प्रबन्ध करता हूँ ।

बेला—मैं आपके चरण छू रही हूँ नाथ ! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं अपने अभियान में सफलता प्राप्त कर सकूँ ।

[पृष्ठ भूमि से तुरही बजने का स्वर तथा सैनिकों का उत्साह पूर्ण घोष । दोनों स्वरों के साथ ही पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[रात्रि की निस्तब्धता भंग करने वाली भीगुरों की भंकार का स्वर पृष्ठ-भूमि में उभरता है। दूर से मिट्टारों की आवाज आती है। समीप ही बेला की भारी पदचाप]

बेला—कौन है ? चोर की तरह मेरे शिविर में घुसने वाला कायर, सामने आ नहीं तो मेरा खंग तेरे हृदय को बेध डालेगा।

रूपा—(कम्पित स्वर में) मैं...मैं...हूँ रूपा ! राजकुमारी बेला की दासी।

बेला—तू...तू यहाँ क्या कर रही है ?

रूपा—आप ही राजकुमार ब्रह्मा हैं क्या ?

बेला—हाँ ! बोल, क्या कहना चाहती है ?

रूपा—मैं आपको चेतावनी देने आयी हूँ। आपका पत्र पढ़कर दिल्लीपति बहुत क्रुद्ध हो उठे हैं। भोर होने से पहले ही राजकुमार ताहिर आप पर आक्रमण कर देंगे।

बेला—तुम्हें हमारा इतना ध्यान क्यों है ?

रूपा—क्या आपको राजकुमारी बेला ने कुछ नहीं बताया ?

बेला—नहीं ! तेरे विषय में कोई चर्चा नहीं की उन्होंने। मुझे तुम पर सन्देह हो रहा है। कहीं तू दिल्लीपति की गुप्तचर तो नहीं है ?

रूपा—मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, राजकुमार जी ! मैं गुप्तचर नहीं हूँ। मैं आपको चेतावनी देने आयी थी और...और...

बेला—(डॉट कर) और.....

रूपा—और राजकुमारी की कुशल क्षेम पूछने आयी थी। वे कुशल से तो हैं ?

बेला—रूपा ! तू अन्धी है क्या !

रूपा—अपराध क्षमा हो, राजकुमार जी ! आपका आशय...

देता—(बीच में ही) मुझ दूमरी और करके खड़ी हो जा ।

रूपा—जो आज्ञा ।

बेला—अब इधर देख ।

रूपा—(आश्चर्य में) अरे ! यह क्या ? राजकुमारी बेला ! राजकुमार ब्रह्मा के वेश में ! आपका स्वर सुनकर एक बार सन्देह तो हुआ था पर इस वेश में मैं आपको पहचान ही नहीं पायी थी । शिरस्त्राण उतारने के बाद आपके कुंचित कमनीय केश देखकर.....

बेला—वस वस रहने दे । आ, मेरे पास बैठ और मुझे दिल्ली के सब समाचार सुना ।

रूपा—पहले आप बताइये कि राजकुमार ब्रह्मा कैसे हैं ?

बेला—सकुशल हैं ।

रूपा—आपको यह स्वांग करने की आवश्यकता क्यों हुई ?

बेला—स्वामी की आज्ञा से । (व्यथित स्वर में) रूपा, उन्हें यह विश्वास हो गया है कि भैया ताहिर छली और कपटी हैं और उन्हीं के आदेश से चौड़ा ने उन्हें आहूत किया है ।

रूपा—किन्तु राजकुमार ताहिर तो..... ।

बेला—लाख चेष्टा करने पर भी मैं उनके विश्वास को न बदल सकी । उन्होंने कहा कि...कि यदि तुम्हें मेरा जीवन प्रिय है तो...तो राजकुमार ताहिर को वन्दी करके मेरे सामने लाओ (स्वर भारी हो जाता है) एक और पति का प्यार है, दूसरी ओर भाई का स्नेह । (निःश्वास छोड़कर) पति के प्यार को पाने के लिए मैंने भाई के स्नेह का गला घोट देने का निश्चय कर लिया है । मैं भैया ताहिर को वन्दी करने आयी हूँ ।

रूपा—पर...पर यह कैसे सम्भव है ? राजकुमार ताहिर वन्दी होने से पहले मर जाना पसन्द करेंगे ।

बेला—(चीखकर) रूपा ! यह क्या कह रही है तू ? (लिंगकते हुए)
ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकाल रूपा, ऐसी अशुभ बात
मुँह से न निकाल ।

रूपा—(गम्भीर स्वर में) मैंने तो सत्य बात कही है, राज-
कुमारी जी ।

बेला—फिर मैं क्या करूँ, रूपा, तू ही बता । मेरे सामने अँधेरा हो
अँधेरा है । यदि मैं भैया को बन्दी बनाकर उनके सामने नहीं
ले जाती तो...तो मैं उन्हें सदा के लिए खो दूँगी । वे मेरा
मुँह भी नहीं देखेंगे । (हककर) रूपा ! मेरा मन में एक बार
विचार आया था कि क्यों न आत्म-हत्या करके इस द्वन्द्व से
मुक्ति पा लूँ, परन्तु दूसरे ही क्षण मैं संभल गयी । आत्म-हत्या
करने पर वे मुझे कायर समझेंगे, पर.....पर मैं कायर नहीं
हूँ रूपा, मैं कायर नहीं हूँ ।

[दूर से तुरही का स्वर और घोड़ों की टापों की पास आती
हुई आवाज]

रूपा—राजकुमार ताहिर आ पहुँचे ।

बेला—(ऊँचे स्वर में) तैयार हो जाओ, साथियो ! शत्रु पर भूखे
शेर की तरह टूट पड़ो ।

[समीप ही तुरही बजने की आवाज तथा कोलाहल, अस्त्र-शस्त्रों की
आवाज, घायलों की कराहे, चीखें आदि ।]

ताहिर—(दूर से) राजकुमार ब्रह्मा कहाँ हैं ? यदि साहस हो तो वे
मुझसे आकर द्वन्द्व युद्ध करें ।

बेला—(ऊँचे स्वर में) मैं इधर हूँ, राजकुमार ताहिर !

ताहिर—(पास आकर) भय के कारणों स्वर भी पतला हो गया है
आपका ।

बेला—भय के कारण आपके कान ठीक काम नहीं कर रहे हैं ।

ताहिर—पहली चोट आप ही करें ।

बेला—सावधान, राजकुमार ताहिर ! मेरी तलवार विजली बनकर आ रही है ।

[तलवार को दाय पर खेचने की ध्वनि]

ताहिर—यस । इतनी ही शक्ति थी विजली में ! अब मेरी चोट बचाओ ।

रूपा—(दूर से पाम आता स्वर) ठहरिये राजकुमार जी ! ठहरिये ! (पाम आकर) आप अपनी तलवार इन पर न उठाइये !

ताहिर—(आश्चर्य से) रूपा तू यहाँ कहाँ ? और तुझे राजकुमार ब्रह्मा का इतना ध्यान कब से रहने लगा ?

रूपा—यह राजकुमार ब्रह्मा नहीं, राजकुमारी बेला हैं ।

ताहिर—(आश्चर्य से) राजकुमारी बेला पुरुष वेश में । यह क्या कह रही है तू ?

बेला—रूपा ठीक कह रही है भैया ।

ताहिर—(व्यंग्य से) क्या चन्देलों की यह रीति है कि पुरुष घर में चूड़ियाँ पहन कर बैठें और स्त्रियाँ युद्ध क्षेत्र में जायें ? आल्हा ऊदल जैसे वीरों के रहते तुम्हें पुरुष वेश धारण करने की क्या आवश्यकता पड़ गयी, बेला ?

बेला—मैंने अपनी इच्छा से ऐसा किया है भैया ! मैं.....मैं आपको बन्दी करने आयी हूँ । (ताहिर की हँसी का स्वर) इसमें हँसने की कोई बात नहीं है । (धीमे स्वर में) उन्हें पाने का यही एक मार्ग है, भैया ! यदि.....यदि मैं आपको बन्दी बनाकर न ले जा सकू तो.....तो मैं उन्हें खो दूँगी.....सदा के लिए खो दूँगी (गला भर आता है) उन्हें.....उन्हें पाने के लिए आप को बन्दी करना ही पड़गा ।

ताहिर—(धीमे स्वर में) यह बात है । बेला, (हृद्ध कठ से) पिता के पाप का प्रायश्चित्त यदि पुत्र द्वारा हो सके तो इससे शुभ बात और क्या हो सकती है । मैं बन्दी होने के लिए तत्पर

हूँ। जकड़ दो शृंखलाओं से मेरा शरीर और ले चलो अभी मुझे राजकुमार ब्रह्मा के पास।

रूपा—राजकुमार जो !

ताहिर—बन्दी होना तो साधारण बात है, बेला ! यदि.....यदि अपना जीवन देकर भी मैं तुम्हारा मोहाग तुम्हें लौटा सका तो संकोच नहीं करूँगा। ले चलो मुझे, बेला, अभी ले चलो !

बेला—(आर्द्र कंठ में) भैया !

ताहिर—(भीगे स्वर में) वर्षों से तुम मेरी कलाई पर रेशमी धागे बाँधती रही हो। आज.....आज..... आज उन धागों का मूल्य चुकाने का अवसर आ गया है। देर न करो बेला ! मुझे बन्दी बनाकर शीघ्र ले चलो।

बेला—(मिमकी गोकने का अणपल प्रयास करती हुई) भैया ! मुझ अभागिन के कारण.....।

ताहिर—(बीच में ही) कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती, बेला ! तुम तुम मेरी बहन हो, राजकुमार ब्रह्मा की पत्नी हो ! अपना कर्तव्य पूरा करो।

बेला—नहीं, मैं कायर नहीं हूँ, मैं कायर नहीं हूँ भैया ! अपना कर्तव्य पूरा करूँगी मैं ! (शृंखला की भनक्ताहट) अपना कर्तव्य पूरा करूँगी मैं !

[प्रेक्षा के दोलते-दोलते पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठ-भूमि से शृंखला की भनक्ताहट का स्वर उभर कर पास आता है। ब्रह्मा की कराह का स्वर]

बेला—आँखें खोलिये, स्वामी ! आपके चरणों की दासी राजकुमार ताहिर को बन्दी बनाकर ले आयी है।

ब्रह्मा—(आवेश में) अभिमानो ताहिर को शृंखला में कसा देखकर
मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी आत्मा को शान्ति मिल रही है।

बेला—आवेश में न आइये ! अभी आपका घाव हरा है।

ब्रह्मा—ताहिर ! अब कहाँ है तुम्हारा मान और क्षत्रित्व ! धिक्कार
है तुम पर ! एक स्त्री के हाथों बन्दी हो गए !

बेला—(धवराये स्वर में) शान्त रहिये, नाथ ! देखिये, आपके
घाव से रक्त बह रहा है ?

ब्रह्मा—(अधिक आवेश में) मेरे घाव का रक्त तभी बन्द होगा जब
मेरा खंग इसके हृदय के रक्त में स्नान करेगा। (तेज स्वर
में) मेरा खंग कहाँ है।

ताहिर—(तेज स्वर में) उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

[शृंखला की खनक के साथ ही ऊपरी की चीख]

बेला—(सिसकते हुये) यह क्या किया आपने भैया ? अपना ही
खंग अपने हृदय में भोंक लिया। (सिसकती रहती है)

ताहिर—(टूटे स्वर में) बे...ला... ! रो...ओ...मत। मेरा...
जीवन...तुम्हारा...सो... हा... ग...। बे... ला... (स्वर
टूट जाता है)

[बेला की सिसकिया तेज हो जाती है]

ब्रह्मा—मेरे खंग से डर कर आत्म-हत्या कर ली। कायर !

बेला —(आवेश में) भैया कायर नहीं थे। मैं कहती हूँ भैया
कायर नहीं थे। उनकी आत्म-हत्या का रहस्य आप नहीं समझ
सकेंगे...आप नहीं समझ सकेंगे...।

ब्रह्मा—मैं प्रसन्न हूँ.....बहुत प्रसन्न हूँ...। आज मेरा प्रतिशोध
पूरा हुआ। (कराहने का स्वर) ओह ! पीड़ा। (पुनः तीव्र
कराह)

बेला—(धवराये स्वर में) ओह ! आपके घाव से तो बहुत रक्त बह
रहा है।

ब्रह्मा— (कराहते हुए) बे...ला... ! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ ।
अब...अब मैं शान्ति से मर सकूँगा । ओह... ! अन्धकार
घोर अं...ध...का...र । बे...ला...

[ब्रह्मा का स्वर सहसा टूट जाता है । बेला “स्वामी” कहकर
चीख पड़ती है । फिर उसकी सिसकियों की आवाज़ आती
रहती है ।

रूपा— (धीमे स्वर में) धैर्य रखिये, राजकुमारी जी ! भगवान को
यही इच्छा थी ।

बेला— (सिसकती हुई) भगवान ! कहाँ है भगवान ? मैं पूछूँगी
उससे कि मुझसे मेरे स्वामी को छोन कर क्या मिल गया
उसे ? (रुदन) ।

रूपा—राजकुमारी जी !

बेला—न जाने किस कुचड़ो में मेरा जन्म हुआ था । नाश मेरे
आगे पीछे चलता है । (रुक कर) तू ठीक ही गाती
है रूपा ! “बेला फूले आधी रात” । मैं भी तो बेला ही
हूँ । आधी रात को खिली और प्रभात होने से पहले ही
धूल में मिल गयी । (सिसकियों का स्वर)

ऊदल—(दूर से पास आता हुआ स्वर) अभी कौन चीखा था इस
शिविर में ? राजकुमार सकुशल तो हैं ? (पास आकर) यह
क्या हुआ ? क्या.....

बेला—(बीच में ही) मैं भैया को बन्दी बनाकर ले आयी थी ।
मेरे सोहाग की बेल को उन्होंने अपने रक्त से सींचने की
चेष्टा की पर...पर...मुझ...अभागिन के भाग्य में सोहाग-
सुख था ही नहीं । (सिसकती हुई) मेरा सोहाग-दीप भी
दुर्भाग्य की भयंकर आँधी में बुझ गया ।

ऊदल—शिव ! शिव !! शिव !!! धीरज रखिये, रानी माँ !

बेला—कैसे रक्खूँ, किसके लिये रक्खूँ ? अब रह ही क्या गया
है मेरे लिये ?

ऊदल—यह क्या कह रही हैं आप, भगवान की कृपा से महोबे में सब कुछ है। आप राज-सुख.....

बेला—(तेज स्वर में) तुम्हारे मुख से ऐसे शब्द सुनने की आशा नहीं थी, ऊदल भैया ! नारी के सुखों की खान उसका पति ही है। पति के बिना उसका जीवन नरक है, रौरव नरक।
(कुछ रुक कर दृढ़ स्वर में) मैं पति के साथ सती होना चाहती हूँ।

ऊदल—(आर्द्र स्वर में) रानी माँ !

बेला—और इसका सारा प्रबन्ध मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ती हूँ।

ऊदल—जो आज्ञा, रानी माँ ! परन्तु.....

बेला—परन्तु क्या, ऊदल भैया ? क्या आप नहीं चाहते कि इस भयंकर नरक की यंत्रणाओं से मैं मुक्त हो जाऊँ ? क्या...

ऊदल—यह बात नहीं है, रानी माँ ! मैं यह कदना चाहता था कि हमारे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि आप के पिता को सेना आँधी के वेग से इसी ओर आ रही है।

बेला—आँधी का वेग हिमालय को अपने स्थान से ढिगा नहीं सकता। तुम शीघ्र ही दो चिताओं का प्रबन्ध करो। एक भैया के लिये और दूसरी मेरे पति तथा मेरे लिये। मुझे विश्वास है कि तुम लोगों के रहते पिता जी मुझे सती होने से नहीं रोक सकते।

ऊदल—जीवन देकर भी यदि मैं आपके विश्वास को सुरक्षित रख सका तो मेरा सौभाग्य होगा, रानी माँ ! मैं अभी दो चन्दन चिताओं की व्यवस्था करता हूँ ! (पद चाप दूर जाती है)

बेला—तूरो रही है, रूपा ! पगली ! आज तो हँसने का दिन है। मैं अपने स्वामी से मिलने जा रही हूँ। आ, मेरा शृंगार कर दे, ऐसा शृंगार जिसे देख कर रति भी लजा जाये।

रूपा—जो आज्ञा, राजकुमारी जी ! (सिसकती है)

विरास

[पृष्ठभूमि से बोडे की टापों का स्वर उभर कर पाप आता है ।]

पृथ्वी०—(गरज कर) ताहिर को छल से बन्दी बनाने वाले कायरों, सामनेआओ ! प्रतिशोध की आला में तुम्हारा सर्वनाश करने के लिये पृथ्वीराज आ पहुँचा है ।

ऊदल—आपके चारणों ने आपका सस्तिष्क विकृत कर दिया है !

पृथ्वी०—अशिष्ट छोकरे ! ताहिर को मुक्त करता है या नहीं ?

ऊदल—आपके आने से बहुत पहले ही वे महामुक्ति पा चुके हैं, महाराज ! अपनी बहन के सोहाग को जीवन देने के लिये उन्होंने अपना जीवन विसर्जित कर दिया और एक आप हैं कि बेटी से न जाने किस जन्म का वैर निभा रहे हैं ।

पृथ्वी०—ताहिर ने आत्म-हत्या कर ली ? ठीक है । कायरों का यही अन्त है । बेला कहाँ है ? मैं उसे दिल्ली लेजाऊँगा और उसका विवाह किसी कुलीन राजकुमार से करूँगा ।

ऊदल—बेला रानी ने पति के साथ सती होने का निश्चय किया है ।

पृथ्वी०—(कुद स्वर में) मेरी बेटी को जीवित जलाने का दुस्साहस करने वाले पापियो, तुम्हारा काल आ पहुँचा है । मेरे रहते बेला सती नहीं हो सकती ।

ऊदल—जब तक हमारे शरीर में रक्त की एक बूँद भी रहेगी तब तक आप यहाँ से आगे नहीं बढ़ सकते । रानी माँ चिता पर बैठ चुकी हैं । वस अग्नि प्रज्वलित करने की देर है ।

बेला—(दूर से) मेरी चिता में अग्नि देने की आवश्यकता नहीं । उसे जलाने के लिये मेरे मन का दाह ही बहुत है ।

रूपा—(दूर से) सती बेला की जय हो ! देखो, सती के खुले केशों से अग्नि शिखायें स्वयं निकल रही हैं ।

पृथ्वी०—(गरज कर) नारकीय कीड़ों ! सावधान ! तुम भी वचकर नहीं जा सकोगे ।

[अस्त्र-शस्त्र चलने की ध्वनि के साथ ही आरमों की चीख-पुकार । कराहें । हाथियों की बिघाड़ तथा घोड़ों का विह्वलता । तोपों का स्वर]

पृथ्वी०—शैलराज से टकराने का यही फल होता है । वह पड़ा है ऊदल, वह है कन्नौज का राजकुमार लक्ष्मण ! देवा, जगन्निक संयद और गंगा के मुँह उबर भूत में लोड रहे हैं (अट्टहास) आल्हा, इन्दल के साथ भाग गया । कायर कहीं का । आज मैं विजयी हूँ । (अट्टहास)

रूपा—(दूर से पाय आता हुआ स्वर) किंतु आप जोतकर भी हार गये, महाराज !

पृथ्वी०—कौन, रूपा !

रूपा—हाँ, महाराज ! यह आप की जय नहीं, पराजय है ! न आप राजकुमार लालि को छुड़ा सके और.....और न राजकुमारी बेला को हो सती होने से रोक सके !

पृथ्वी०—(धीरे स्वर में) रूपा।

रूपा—आप सती बेला को लेने आये थे न ! (व्यंग्य से) जाइये, उस आर ! वहाँ एक पुष्पनी हुई चिता है । उसको गर्म राख ले जाइये और उससे अपना कलेजा ठण्डा कीजिये ।

पृथ्वी०—तुझे क्या हो गया है, रूपा ?

रूपा—वह राख केवल राजकुमारी बेला की ही नहीं हैं, महोदय और दिल्ली की भी है । (पागलों की तरह हँसकर) वह राख प्यार और ममता की है ।

पृथ्वी०—तू पागल हो गयी है, रूपा !

रूपा—इस सर्वनाश पर भी जो पागल न हो वह पत्थर है, जैसे आप ! आपकी आँखें अब भी बन्द हैं । आज आप अपनी जय पर

हँस रहे हैं । हँसिये, जी खोल कर हँसिये । पर कल...कल आप अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाह कर भी नहीं कर पायेंगे । तब सारा देश राख हो जायेगा । संती बेला की की राख उड़कर सारे देश पर छा जायेगी । (दूर जाता हुआ स्वर) सारे देश पर छा जायेगी ।

पृथ्वी— (स्वगत धीमे स्वर में) बेला की चिता की राख सारे देश पर छा जायेगी, सारा देश राख हो जायेगा ! ओह.....

[सहसा तीव्र तूफान का स्वर, बादलो की गरज और बिजली की कड़क । दूर से रूपा की तीव्र हँसी और फिर उसका कर्ण स्वर, “बेला फूले आधी रात, गजरा मैं किसके गले डालूँ ! हो, बेला फूले आधी रात ।” उसके अन्तिम बोल, बादलो का गरज तथा घोड़ों की दूर जाती टापों के स्वर के साथ पूर्ण फड आउट]

चाँद बीबी

[ऐतिहासिक नाटक]

[पृष्ठ-भूमि से अजान का शब्द "अटला हो अकबर, अटला हो अकबर" उभर कर समीप आता है और फिर दूर होता हुआ विलिन हो जाता है । एक क्षण तक पूर्ण विराम रहता है ।]

चाँद बीबी— (धीमे स्वर में) परवर दिगार ! मेरे बेटे इब्राहीम पर अपनी रहमत का साया रख ! उसे इतनी समझ और ताकत दे कि वह हमेशा अपने फर्ज को पूरा कर सके । ऐ खुदावन्द ताला ! आदिलशाही के चिराग को अपना नूर बख्श ।

[पद-चाप समीप आने का स्वर]

इब्राहीम—अम्मी हुजूर ! मुझे याद फरमाया था आपने ?

चाँद बीबी—(प्रसन्न स्वर में) आ गया मेरे बेटे ! बैठ, उधर नहीं यहाँ मेरे पास बैठ ! मुझे तुझसे बहुत कुछ कहना है !

इब्राहीम—(पास से) हुक्म दीजिये ।

चाँद बीबी—मैं कल सुबह ही अहमद नगर जा रही हूँ ।

इब्राहीम—यह क्या कह रही हैं आप ? क्या ख़ता हो गयी है मुझसे ?

चाँद बीबी—मेरे बेटे से ख़ता क्या होगी ! बेटा, मेरा जाना जरूरी है । मेरा फर्ज मुझे पुकार रहा है ।

इब्राहीम—फर्ज ?

चाँद बीबी—हाँ, फर्ज ! तू तो जानता ही है कि मुगलों की नजर मुद्दत से दक्खिन की आजाद सल्तनतों पर लगी है । चार-पाँच साल पहले अकबर ने हुक्म-नामा भी भेजा था । खान-देश ने तो अपनी आजादी बेच दी, पर अहमदनगर की निजामशाही, बीजापुर की आदिलशाही और गोलकुण्डा की कुतुबशाही का खून सफेद नहीं हुआ था ।

इब्राहीम—मालूम है, मुझे वह सब मालूम है । लेकिन.....

चाँद बीबी—इस वक्त अहमद नगर की हालत नाजुक है, बेटा !
इब्राहीम निजाम शाह के तख्त पर बैठते ही अमीरों ने भगड़े
शुरू कर दिये थे वे नहीं चाहते थे कि एक हब्शी औरत का
बेटा तख्त पर बैठे । उनके जंग में काम आते ही तख्त के
लिये लड़ाइयाँ शुरू होगयी हैं । खुदा जाने यह खून खराबी
क्या रंग लायेगी । कल ही तो खबर आयी है कि कुछ
अमीरों ने अकबर को अहमद नगर पर हमला करने के लिये
दावत दी है ।

इब्राहीम—मुझसे यह भी नहीं छिपा है, अम्मी हुजूर ! मगर मेरी
समझ में नहीं आता कि आप वहाँ जाकर क्या करेंगी ? अब
आपका घर अहमद नगर नहीं, बीजापुर है ।

चाँदबीबी—मेरी रंगों में निजामशाही खून है, इब्राहीम ! बीजापुर
में रहकर मैंने बीबी और माँ का फर्ज पूरा किया, अब अहमद
नगर जाकर बेटी का फर्ज पूरा करना है । निजामशाही का
मासूम चिराग अगर मैं अपना खून देकर भी रोशन रख सकी
तो मेरी जिन्दगी कामयाब हो जायेगी । तख्त के साथ साथ
शाहजादा बहादुर की जान भी खतरे में है । मलिक अम्बर
के पैगाम को सुनकर न जाने के मुकाबले में मर जाना
पसन्द करूँगी ।

इब्राहीम—जैसी आपकी मर्जी । मगर यह उम्त्र.....

चाँदबीबी—(बीच में ही व्यंग्य से) आराम करने की है ! बेटा
तलवार उम्त्र की नहीं, हौसले की होती है । चाँद का काम तो
हमेशा अँधेरे से लड़ना ही है । (कोमल स्वर में) जब तू
मासूम था, तभी तेरे वालिद का खून जालिम, गद्दार धोखे
बाजों ने कर दिया । शौहर की लाश पर आँसू बहाने के
बजाय मुझे तेरी हिफाजत के लिए हाथ में तलवार लेकर

दुश्मनों का खून बहाना पड़ा। अब तू जवान हो गया है, तेरे वाजुओं में दुश्मनों का सिर भुंकाने का जोर आगया है, तेरे दिल में बड़ी से बड़ी मुसीबत से टकरा जाने का हौसला आगया है, खुदा के करम से अब तू अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। इब्राहीम आदिल शाह का नाम चारों तरफ रोशनी की तरह फैल रहा है। अब न रोक मुझे। आपसी भगड़ों से ऊब कर जाना तो पहले ही चाहती थी, पर अब तो किसी हाल में भी रुकना नामुमकिन है। मेरे वतन की मिट्टी मुझे पुकार रही है। (दूर जाता हुआ स्वर) मेरे वतन की मिट्टी मुझे पुकार रही है.....।

[बोलते-बोलते पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

चाँद वीवो—(आवेश पूर्ण स्वर में) निजामशाही के नाम और वतन की मिट्टी के लिये मर मिटने वाले प्यारे साथियों! आर लोगों का जोश और हौसला देखकर मैं बहुत खुश हूँ। मुराद की फौजों ने किले को चारों तरफ से घेर लिया है। मगर मायूस होने की जरूरत नहीं है। खुदा का करम हमारे साथ है, क्यों कि हम सच्चाई के लिये लड़ रहे हैं, अपने हक के लिये लड़ रहे हैं, अपने वतन के लिये लड़ रहे हैं। हमारी जंग इन्सानियत और इन्साफ की जंग है। (पुरुष के कण्ठों से हर्ष सूचक समवेत स्वर) हमारी जंग जिन्दगी के लिये है। जियो और दूसरों को भी जीने दो, हमारा क़ौल है। मुगलों की आँखों में हमारी आजादी काँटे की तरह खटकती है। वे सारे हिंदोस्तान को रौंदना चाहते हैं। हम जीते जी ऐसा नहीं होने देंगे। (पुनः हर्ष सूचक समवेत स्वर) याद रखो, आजादी की जंग में या तो हमें जीतना है या फिर मर कर

शहीद होना है । सुबह करीब है । सूरज की पहली किरन के साथ ही हमारी तोपें आग उगलने लगे । अब आप लोग अपनी-अपनी जगह पर मुस्तैद हो जायें ।

[कोलाहल का स्वर उठकर दूर जाता हुआ विलोम हो जाता है]

मलिक अम्बर—आपके आ जाने से सिपाहियों में दूना जोश आगया है ।

चाँद बीबी—अपने वतन के लिये मरने का जोश सभी में होता है, मलिक अम्बर ! जिनमें वतन के लिये वफादारी नहीं, वे इन्सान नहीं, हैवान हैं ।

मलिक अम्बर—आप ठीक कह रही हैं । मैं तो मंजूर खाँ और उसके साथियों को हैवान भी नहीं, पत्थर समझता हूँ, पत्थर ।

चाँद बीबी—मंजूर खाँ ने मुझ से मिलकर माफी माँगी है, और वतन व निजामाशाही की वफादारी की कसम खायी है । लेकिन मुझे यकीन नहीं है उन पर । उनके साथियों के साथ-साथ उन पर भी कड़ी नज़र रखी जाये ।

मलिक अम्बर—आप फिक्र न करें । मैंने सब इन्तजाम कर दिया है । सिर उठाते ही आस्तीन के साँपों के फन कुचल दिये जायेंगे ।

चाँद बीबी—एक काम मैं आप पर और छोड़ती हूँ ।

मलिक अम्बर—हुक्म कीजिये ।

चाँद बीबी—शाहाज़दा बहादुर की हिफाज़त ।

मलिक अम्बर—मेरी खुशकिस्मती है आप ने मुझ इस काबिल समझा (तलवार म्यान में निकालने की आवाज़) इस तलवार की कसम खाकर कहता हूँ कि शाहज़ादा पर कोई आँच तब आ पायेगी, जब मेरा सिर धड़ से अलग होकर ज़मीन पर होगा ।

चाँद बीबी—मुझे यकीन है आप पर ! काश ! हमारे सभी अमीर ऐसे ही होते । चलिए, हमलावरों को दिखा दें कि अहमद नगर का किला लेना लोहे के चने चवाना है ।

[क्षणिक विराम के बाद कोलाहल ! तोपों की आवाज़ ! आह ! हाय मरा ! मार डाला ! ! ! की चीख पुकार ।]

चाँद बीबी—शाबाश बहादुरो ! तीर का जवाब बन्दूक से दो और बन्दूक का तोप से । मुगल फौज के पैर उखड़ रहे हैं । मलिक अम्बर ! मेरी बन्दूक तो देना ! ज़रा मुराद को तो सबक सिखा दूँ । किस शान से भागती हुई फौज को रोकने की कोशिशें कर रहा है (बन्दूक चलने की आवाज़) वह गिरा !

मलिक अम्बर—निशाना चूक गया आपका ! गोली मुराद के नहीं घोड़े के लगी है । वह भागा उठकर मुराद । मैं छोड़ता हूँ तीर ।

चाँद बीबी—नहीं । मैंने जानकर उसे नहीं मारा । चाहती तो मार सकती थी, मगर मैं तो सिर्फ उसकी आँखें खोलना चाहती थी । मौत के चंगुल से बचकर उसे मालूम हो गया होगा कि मौत कितनी खौफनाक होती है । शायद उसकी समझ में आ जाये कि इस फानी ज़र और ज़मोन के लिये इन्सानी खून की कीमत देना कितना महँगा सौदा है ।

[तोप की आवाज़ । दीवार गिरने की आवाज़]

मलिक अम्बर—शुक है ! आप बाल-बाल बच गयीं । गोला वरीब ही गिरा था ।

चाँद बीबी—किले की यह दीवार गिरना ठीक नहीं है । इसकी मरम्मत अभी होनी चाहिये ।

मलिक अम्बर—लेकिन अब तो शाम हो गयी है । मुगलों की फौज भी हट गयी है । सुबह.....

चाँद बीबी—आपके मुँह से मैं यह क्या सुन रही हूँ ? (दृढ़ स्वर में)
मरम्मत रात में ही होगी । मैं खुद कराऊँगी ।

मलिक अम्बर—मैं शर्मिन्दा हूँ । आप जाकर आराम करें । मैं अभी
मरम्मत कराता हूँ ।

चाँद बीबी—सिपाही आराम नहीं, काम करना जानते हैं । आप
कुछ चुने हुये आदमियों को ले आइये । मैं यहीं खड़ी हूँ ।

मलिक अम्बर—दिन भर आपने मशीन की तरह काम किया है ।
कभी फिले के इस छोर पर कभी उस छोर पर । आप थक
गयी होंगी, सुल्ताना !

चाँद बीबी—सुल्ताना ? कौन सुल्ताना ? फिर कभी सुल्ताना का
लफ़्ज़ जुवान पर न आये । हम सब बराबर हैं, सब सिपाही
हैं—वतन की आज़ादी के लुटेरों से जान की बाज़ी लगाकर
लड़ने वाले सच्चे सिपाही । (कोलाहल का स्वर दूर से समीप
आता है) लोग इधर ही आ रहे हैं । मरम्त का काम शुरू
हो । मशालें इस तरह रखो जायें कि दुश्मन देख न सकें ।
लो, पहली ईंट मैं ही रखती हूँ ।

[बोलते-बोलते पूर्ण फड आउट]

अन्तराल के बाद

चाँद बीबी—आपका क्या खयाल है, मलिक अम्बर ?

मलिक अम्बर—मेरी राय में तो सुलह कर लेनी चाहिये ।

चाँद बीबी—और आपका, मन्ज़ूर खाँ ?

मन्ज़ूर खाँ—मुगलों से सुलह करना निज़ामशाही के नाम पर बड़ा
लगाना है । इससे हमारी तौहीन होगी और अहमदनगर
की इज्ज़त खाक में मिल जायेगी । पास-परोस के सुल्तान
हम पर हँसेंगे !

मलिक अम्बर—(व्यग्र से) जब मुगलों को अहमद नगर पर हमला करने के लिये पैगाम भेजा गया था तब तौहीन नहीं हुई थी ? जब तख्त के साथ गहारी की गयी थी तब इज्जत ख़ाक में नहीं मिली थी ? जब बतन को बेचने के लिये मस-विदा.....

मंजूर खाँ—(बीच में ही तेज़ स्वर में) मैं अपनी बेइज्जती बरदाश्त नहीं कर सकता । जहाँ मेरी राय की कद्र न हो वहाँ रुकना ही बेकार है !

चाँद बीबी—(कोमल स्वर में) आप तो ख़फ़ा हो गये । यह मौक़ा आपस में लड़ने का नहीं है । बैठ जाइये ! और कुछ कहना आपको ?

मंजूर खाँ—मुझे तो बरार का सूबा देकर सुलह करना कतई पसन्द नहीं । मुराद के पैगाम में जरूर कोई चाल है । इस सुलह का मतलब है हार !

मलिक अम्बर—और लड़कर हम कब तक किले की हिफ़ाज़त रख सकते हैं ? कहीं से मदद की भी तो उम्मीद नहीं है । बीजा-पुर की फौज आयी भी थी, मगर उसे मुगलों ने पीछे खदेड़ दिया ।

चाँद बीबी—जंग जारी रखने का मतलब है खुदक़शी । मुगलों की समुन्दर सी उफनाती हुई फौज का मुकाबला हमारी तिन्के सी फौज कब तक कर सकती है ? मैं तो समझती हूँ कि बरार का सूबा देकर सुलह करली जाये । लोग चैन की साँस तो ले सकेंगे ।

मंजूर खाँ—सुलह बुज़्जदिली का दूसरा नाम है । मुराद और अब्दु-रहीम खानखाना में मनमुटाव हो गया है । हमारे लिये यह सुनहरा मौक़ा है ।

चाँद बीबी—मालूम है ! तभी तो मैं जल्द से जल्द सुलह कर लेना चाहती हूँ। अगर दिल्ली से दूसरा सिपहसालार आ गया तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

मंजूर खाँ—जैसी आप की मर्जी। मैं जा रहा हूँ।

[पदचाप दूर जाकर विलीन हो जाती है।]

मलिक अम्बर—गद्दार वफादार कब से हो गये ?

चाँद बीबी—इसमें भी कोई राज है। शायद वे यही चाहते हैं कि हम लड़ते-लड़ते खत्म हो जायें, निजामशाही का तख्त और ताज खाक में मिल जाये। मगर ऐसा नहीं होगा, कभी नहीं होगा। मुराद के पास फौरन पैग़ाम भेज दो कि सुलह की शर्त मंजूर है।

मलिक अम्बर—जो हुक्म !

[पदचाप दूर हो जाती है।]

चाँद बीबी—(धीमे स्वर में स्वगत) महीनों की इस जंग ने हज़ारों औरतों को बेवा कर दिया, माँओं के लाल निगल लिये, वहनों के भाई चबा डाले, फिर भी जंग के शैतान की प्यास नहीं बुझी। आखिर लोग यह कब समझेंगे कि ताज और तख्त इन्सान के लिये है, इन्सान ताजबे और तख्त के लिये नहीं ! दुनियाँ जंगों-जिलाद से कब उगी ? कब हम हैवानियत छोड़कर इन्सान बन सकेंगे ? जँगली खूँ-खवार भेड़ियों की खूनी प्यास कब बुझेगी ? लाश और लोथों के भूखे गिद्धों की भूख कब मिटेगी ? क्या हम कभी भी भाई-भाई की तरह नहीं रह सकेंगे ? क्या ज़मीन पर बहिश्त कभी न ही आयेगा ? आयेगा, जरूर आयेगा। मैं भले ही उसे देखने के लिये जिन्दा न रहूँ मगर हमारी औलादें जरूर देखेंगी—जरूर देखेंगी।

पूर्ण फेड आउट

अन्तराल के बाद

[कोलाहल का शब्द पृष्ठ-भूमि से उभरता है और थम जाता है ।]

मंजूर खाँ—(उत्तेजित स्वर में) एक औरत ने हमारी नाक फिर कटवा दी है । अहमद नगर और निज़ामशाही के पाकनाम पर दाग लगा दिया है । बहादुरो ? उस दाग को हम खून से ही धो सकते हैं । जब तक हम बरार की पाक ज़मीन से मुगलों के नापाक कदम दूर नहीं करते तब तक हमें आराम हराम है । तलवारें म्यान से निकाल कर दुश्मन पर आज की तरह दूट पड़ो । शेर दिल सोहिल खाँ तुम्हारे सिपहसालार है । कूच करने के लिये तैयार हो जाओ ।

[बिगुल बजने की आवाज । घोड़ों की टापों जा दूर जाता स्वर]

मंजूर खाँ—(स्वगत) एक औरत होकर मुझसे भिड़ने की जुरत ! देखता हूँ अब कैसे बचती है ? (पदचाप पास आती है) कौन ! चाँद सुल्ताना ?

चाँद बीबी—जो कुछ आप कर रहे हैं वह मुल्क के हक में अच्छा नहीं हैं ।

मंजूर खाँ—मैं जो कर रहा हूँ उसे खूब समझता हूँ । बेहतर यही है कि औरतें सयासत से दूर ही रहें ।

चाँद बीबी—(तेज स्वर में) मंजूर खाँ ।

मंजूर खाँ—(व्यंग्य से) औरतों के लिये हरम है, मैदान जंग और सयासत नहीं ।

चाँद बीबी—रजिया सुल्ताना भी तो एक औरत थी ।

मंजूर खाँ—और उनका जो हर्ष हुआ वह भी आप जानती होंगी ।

चाँद बीबी—(क्रुद्ध स्वर में) क्या मैं इसे धमकी समझूँ ?

मंजूर खाँ—आप आजाद हैं जो चाहें समझें । मगर मैं तो हकीकत बयान कर रहा हूँ । और फिर, अहमद नगर के हक में क्या

भला है, क्या बुरा; इसका फैसला अहमद नगर वाले ही करें तो बेहतर है। अच्छा, अब इजाजत चाहता हूँ। मुझे बहुत कुछ करना है अभी।

[उसकी भारी पदचाप दूर हो जाती है।]

चाँद बीबी—(धीमे और उदास स्वर में स्वगत) क्या औरत होना गुनाह है? या अल्ला, यह मैं क्या सुन रही हूँ? क्या मुझे अहमद नगर की भलाई-बुराई के बारे में सोचने का भी हक नहीं? (दुखी होकर) आप के घर में क्या बेटी की कोई जगह नहीं.....कोई जगह नहीं? ठीक है। जो होना है हो। मैं सयासत से तोबा करती हूँ। (दूर जाती पदचाप के साथ दूर जाना स्वर) मैं सयासत से तोबा करती हूँ।

[पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[पृष्ठ-भूमि ने कभी बिजली की कड़क और कभी बादल की गरज की आवाज आती है। मूसलाधार वर्षा होने और तेज हवा चलने की आवाज भी है। ये ध्वनियाँ पृष्ठभूमि से उभर कर पास आती हैं, और फिर पृष्ठभूमि में जाकर विलीन हो जाती हैं।]

चाँद बीबी—आज की रात कितनी खौफनाक है, मलिक! न जाने क्यों मेरा दिल घबरा रहा है। शाहजादा बहादुर सो रहा है न?

मलिक अम्बर—जी हाँ! वे सो रहे हैं। मेरे खास आदमी पहरे पर हैं। मैं भी वहीं था, पर आपको इधर आते देखकर चला आया। आप इस वक्त तख्त के पास क्या करने आयी थीं?

चाँद बीबी—नींद नहीं आ रही थी। उठकर चली आयी। मलिक! मुझे चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा दिखाई दे रहा है। आखिर

वही हुआ, जिसका डर था। सोहिल खाँ के जख्मी होते ही फौज के पाँव ऊखड़ गये। मुगल फौज इधर ही आ रही है। सुना है दिल्ली में खुद अकबर आ रहा है। (भारी स्वर में) अहमद नगर की हिफाजत कैसे होगी? इस तख्त का क्या होगा जिसपर बैठकर निजामशाही मुल्तानों ने सालों इन्साफ और इन्सानियत से हुक्मत की?

मलिक अम्बर—यह सब मंजूर खाँ की ही जिद का नतीजा है। जी में आता है टुकड़े-टुकड़े कर दूँ गद्दार के।

चाँद बीबी—मलिक! मुझे न जाने क्या हो गया है। लगता है कोई मुझे दूर—बहुत दूर से पुकार रहा है। रह रह कर चौंक पड़ती हूँ। आप शाहजादा बहादुर को इसी वक्त ले आइये। अब तख्त खाली नहीं रहना चाहिये।

मलिक अम्बर—सुबह हो जाने दीजिये।

चाँद बीबी—सुबह बहुत दूर है अभी। मुझे इस तूफान से डर लग रहा है।

मलिक अम्बर—जो हुक्म! अभी लाता हूँ शाहजादे को।
[पदचाप दूर हो जाती है।]

चाँद बीबी (स्वगत) कितनी तेज़ हवा चल रही है। लगता है क्या-मत होने वाली है। (पदचाप पास आती है।) कौन? ओह, मंजूर खाँ!

मंजूर खाँ—क्यामत तो नहीं, मगर तेरी मौत जरूर आ गयी है। नाचीज औरत! तू सयासत में दखल देकर रजिया बनना चाहती थी तो, मैं तुझे उसी के पास पहुँचाये देता हूँ।

[चाँद बीबी की चीख के साथ मंजूर खाँ की तेज़ी से भागती हुई पदचाप की ध्वनि। दूर से पास आती हुई पद-चाप।]

मलिक अम्बर—(दूर से) पकड़ लो। जाने न पायें।

[मलिक अम्बर और शाहजादा बहादुर के भाग कर पास आने की आवाज़]

[पृष्ठभूमि से करुणा संगीत की ध्वनि]

मलिक अम्बर—(घबराये स्वर में) आप खैर से तो हैं ? (चीक कर)

अरे, यह खून कैसा ?

[पृष्ठ-भूमि से करुण संगीत की ध्वनि]

चाँद बीबी—(टूटे स्वर में) औरत होने की सज़ा दी गयी है मुझे ।
(कराह कर) ओह ! शाहजादे को तख्त पर बिठाओ । अपने
.....अपने.....खून से ताजपोशी कर दूँ ।

मलिक अम्बर—आपकी मरहम पट्टी.....

चाँद बीबी—(बीच में ही) वक्त कम है । तूफान के भोकों से जिन्दगी
का चिराग बुझने वाला है । बिठाओ बहादुर को तख्त पर ।
हाँ, अब ठीक है । लो, मैंने दिल के खून से ताज पोशी कर
दी । (स्वर टूटने लगता है) ।

मलिक अम्बर—(भारी गले में) चाँद.....

[पृष्ठभूमि का करुण संगीत तीव्र होता है ।]

चाँद बीबी—(बीच ही में कराहते हुये) चाँद बादलों में डूब गया
है मलिक.....मलिक.....इस खूनी तूफान में.....
निजामशाही.....का चिराग.....बुझने न पाये ।

मलिक अम्बर—(सिसकते हुये) आप इत्मीनान रखें । जब तक...
(वाक्य पूरा नहीं हो पाता । गला रुंध जाता है ।)

चाँद बीबी—मुझे रोकर नहीं.....हँसकर.....बिदा दो ।

मलिक.....आप.....आपको.....मैं सुल्तान बहादुर
निजाम शाह का.....वजीर बनाती हूँ.....(रुक-रुक कर)
चिराग...चाँद.....सुबह.....नयी.....सु.....ब.....ह ।

[बोलते-बोलते स्वर टूट जाता है । पृष्ठ-भूमि का संगीत भी तीव्रतम
होकर थम जाता है । मलिक अम्बर और बहादुरशाह की सिसकियों की
आवाज़ गूँजती रहती है । फेड आउट ।]

गोपा का दान

[ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटक]

प्रारम्भिक संगीत ने वाद पृष्ठभूमि से शख-ध्वनि तथा अन्य मंगल
 का स्वर उभरता है। ध्वनियाँ निकट आती हैं और तत्पश्चात्
 पृष्ठभूमि में विलीन हो जाती हैं। समीप ही कई युवतियों के हास्य का
 सम्मिलित स्वर।]

माधवी—सच कहती हूँ राजकुमारो जी, आज तो आकाश का चाँद
 पृथ्वी पर उतर आया है।

यशोधरा—(धीमे स्वर में) बहुत चाटुकार हो गयी है तू।

माधवी—तो दर्पण से पूछ लीजिये। वह तो चाटुकारी नहीं करेगा।
 (रुक कर) किंतु नहीं! बेचारे दर्पण में इतनी शक्ति कहाँ
 कि वह अतुल सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित कर सके? उसका
 हृदय दरक जायेगा।

[युवतियों की सम्मिलित हसी का स्वर]

यशोधरा—(चिढ़ कर) माधवी, बहुत वाचाल हो गयी है तू।

माधवी—रोप न कीजिये, राजकुमारी जी! यह लीजिये, कान पकड़
 कर उठती-बैठती हूँ! (रुक कर) अब तो हँस दीजिये!

यशोधरा—(हसकर) बहुत दुष्ट है तू।

माधवी—आप तो सारे विशेषण मुझे ही दिये डाल रही हैं। कुछ
 और दासियों के लिए भी रहने दीजिये।

यशोधरा—जा, मैं तुझसे नहीं बोलूँगी।

माधवी—अरे, आप ने तो वचन दिया था कि मैं तुम्हें कपिलयस्तु
 ले चलूँगी। भूल गयीं क्या? अभी तो भाँवरें भी नहीं पड़ा
 हैं।

[पृष्ठभूमि से फिर शख की ध्वनि आती है]

माधवी—तुम सब मंडप के पास जाओ ! यहाँ क्या कर रही हो
राजकुमारी जी को कुछ देर तो विश्राम कर लेने ।
जाओ...!

[युवतियों की हँसी का स्वर दूर जाता है]

माधवी—राजकुमारी जी, आज तो आप को रति भी देख लेते
लजा जाये । सोलह शृंगार में आप.....

यशोधरा—(कृत्रिम रोप से बीच में ही) माधवी, तू भी जा ! मैं एकांत
चाहती हूँ ।

माधवी—अभी से एकांत की इच्छा होने लगी, राजकुमारी जी ?
अरे, आप तो लज्जा से लाल पड़ गयीं । अहाहा...! अब
आप का सौन्दर्य और भी बढ़ गया; छवि में चार चाँद लग
गये । ठीक भी है । नारी का सबसे सुन्दर शृंगार लज्जा ही
है ।

यशोधरा—कुछ और कहना है तुम्हें ?

माधवी—कहना क्या है, राजकुमारी जी ! (निश्वास छोड़ कर)
राजकुमार सिद्धार्थ के भाग्य से ईर्ष्या हो रही है । फिर सोचती
हूँ कि भगवान् ने आप दोनों को एक-दूसरे के लिये ही
बनाया है । राजकुमारी यशोधरा यदि रति है तो राजकुमार
सिद्धार्थ साक्षात् मदन ।

यशोधरा—(हँस कर) तू तो ऐसे कह रही है जैसे तूने उन्हें देखा
ही हो ।

माधवी—देखा है तभी तो कह रही हूँ ! उनका सारथी है छन्दक ।
उससे बातें भी की हैं ।

यशोधरा—(आश्चर्य से) अच्छा ! कब ?

माधवी—आज ही । उससे मुझे कई बातें ज्ञात हुई ।

यशोधरा—बहुत शीघ्र धूल-मिल गयी ?

माधवी—आपकी विशेष दासी हूँ न। (हँसती है) राजकुमारी जी, अब आप के रूप और यौवन की परीक्षा होने वाली है।

यशोधरा—(न समझने के ढंग से) क्या बक रही है ?

माधवी—ठीक कह रही हूँ। यह तो आपने सुना ही होगा कि राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म लुम्बिनी वन में हुआ था ?

यशोधरा—हाँ ! और यह भी जानती हूँ कि उनके जन्म के एक सप्ताह बाद ही जननी मायादेवी का देहान्त हो गया था; उनका पालन-पोषण मासी प्रजावती ने किया था।

माधवी—मौसी क्यों कहती हैं ? प्रजावती भी उनकी माँ है। (हक कर) मुझे छन्दक से ज्ञात हुआ कि राजकुमार के जन्म से कुछ मास पहले मायादेवी ने एक विचित्र स्वप्न देखा था।

यशोधरा—स्वप्न देखा था.....?

माधवी—हाँ। उन्होंने देखा कि उनके पेट में श्वेत हाथी घुस गया है।

यशोधरा—(विस्मय से) अच्छा.....!

माधवी—जब उद्योतिषी से स्वप्न का फल पूछा गया तो उस ने कहा कि.....

यशोधरा—(व्यग्रता से) क्या कहा उस ने ?

माधवी—कि माया देवी का पुत्र या तो चक्रवर्ती होगा या सन्यासी।

यशोधरा—(हँस कर) क्षत्रिय-पुत्र सन्यासी नहीं, चक्रवर्ती ही होते हैं।

माधवी—भगवान् करे ऐसा ही हो। परन्तु.....

यशोधरा—परन्तु क्या.....?

माधवी—परन्तु जन्मजात संस्कारों के कारण राजकुमार को प्रासाद

की अपेक्षा बन ही अधिक प्रिय लगते हैं ।

यशोधरा—(चितित स्वर में) यह क्या कह रही है तू ?

माधवी—मुझे छन्दक से ज्ञात हुआ है कि वे उद्यान में प्रहरों अकेले बैठे-बैठे न जाने क्या सोचा करते हैं । उन का मन आमोद-प्रमोद में नहीं लगता और इसीलिये महाराज शुद्धोदन ने यह निश्चय किया कि... (रुक जाती है)

यशोधरा—रुक क्यों गयी तू ? क्या निश्चय किया महाराज ने ?

माधवी—कि राजकुमार का विवाह किसी परम रूपवती राजकुमारी के साथ कर दिया जाये । (रुक कर) पृथ्वी पर आप से सुन्दर है ही कौन ? अब देखना यह है कि आप राजकुमार को अपने रूपजाल में बन्दी बना पाती हैं या नहीं । अरे...। आप तो उदास हो गयीं ! इसीलिए तो मैं बताती नहीं थी । मुझे पूरा विश्वास है कि विजय आप की ही होगी । रूप और यौवन के आगे संयम और वैराग्य के चरण डोल जायेंगे ।

यशोधरा—(दुःखी स्वर में) ऐसा न कह, माधवी, ऐसा न कह । यदि उन्हें संयम और वैराग्य ही प्रिय है तो मैं उन्हें पथभ्रष्ट क्यों करूँगी ? यदि.. यदि... मेरे सौन्दर्य ने उन्हें भटका दिया तो..तो वह कलंकित हो जायगा । (रुक कर) मैं तो उनके चरणों की दासी हूँ, उनके मुख में ही मेरा मुख है ।

[पृष्ठभूमि से कोलाहल उभरता है । शख और अन्य मरल वाद्यों की ध्वनि भी उभरती है ।]

माधवी—लगता है राजकुमार मंडप में आ गये । मैं देखती हूँ जाकर (दूर जाता हुआ स्वर) कदाचित् भाँवरों का समय हो गया ।

यशोधरा—(धीमे स्वर में स्वगत) रूप और यौवन की परीक्षा । नहीं...। मुझे विजय नहीं चाहिये...नहीं

चाहिये । मेरी हार ही...मेरी जीत होगी.....।

[मंगल वाद्यों की ध्वनि समीप आती है और फिर उसके पृष्ठभूमि में जाते-जाते पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

[पक्षियों का कलरव, निर्भर का कल । दूर से रथ की ध्वनि पास आती है]

यशोधरा—आर्यपुत्र, कितना मनोरम स्थान है यह ?

सिद्धार्थ—हाँ, यशोधरे ! जो सुख-शान्ति इस वन-स्थली में है वह नगर के कोलाहल में कहाँ ?

यशोधरा—कुछ देर इसी निर्भर के समीप बैठ कर विश्राम किया जाये ।

सिद्धार्थ—मैं भी यही कहने वाला था । रथ रोक दो, छन्दक !
(रथ रुकने की ध्वनि) तुम भी विश्राम कर लो ।

छन्दक—आपको सेवा को हो मैं विश्राम समझता हूँ, कुमार !
(रुक कर) आप यहाँ विश्राम करें । मैं उस ओर रथ रोकता हूँ ।

[रथ की ध्वनि दूर जाती है]

यशोधरा—आप ठोक कह कहते थे, आर्यपुत्र ! स्वर्ग तो इन्हीं वनों में है ।

सिद्धार्थ—हमारी संस्कृति इन्हीं वनों में फूली-फली है । (रुक कर)
आओ, यहीं बैठ जायें । कितना शीतल जल है इस निर्भर का ।

यशोधरा—और मीठा भी । एक घूँट जल से युग-युग की प्यास बुझ गयी ।

सिद्धार्थ—तुम तो दार्शनिक बनती जा रही हो ।

यशोधरा—आप की संगति का प्रभाव है, आर्यपुत्र ! (हँसती है)

मुझे भी प्रकृति की क्रीड़ाओं में विराट् के दर्शन होने लगे हैं।
सिद्धार्थ—तुम मेरा उपहास तो नहीं कर रही हो ?

यशोधरा—दासी ऐसी धृष्टता कैसे कर सकती है ?

सिद्धार्थ—(हँस कर) तुम मेरी दासी नहीं; सहगामिनी हो।

यशोधरा—आप मुझे आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे रहे हैं।

सिद्धार्थ—सच कहता हूँ, यशोधरे, नारो पुरुष की दुर्बलता नहीं, शक्ति होती है। (रुक कर) पिता जी समझते थे कि विवाह के बाद मैं माया-जाल में फँस जाऊँगा, परन्तु तुम से मेरी साधना को बल ही मिला है।

यशोधरा—यह मेरा अहोभाग्य है।

सिद्धार्थ—मुझे ऐश्वर्य से घृणा है। ऐश्वर्य तृष्णा को जन्म देता है और तृष्णा सब दुखों की जड़ है।

यशोधरा—आप का कथन सर्वथा सत्य है, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—मनुष्य-मनुष्य के बीच में खाई देखकर मुझे दुःख होता है। लगता है, यह धर्म-कर्म सब आडम्बर है, वृथा है।
सच्चा धर्म समानता का है, मानवता का है।

यशोधरा—यह भी सत्य है।

सिद्धार्थ—मैं मनुष्य-मनुष्य के बीच की खाई को पाट देना चाहता हूँ। मैं एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता हूँ जहाँ न कोई छोटा हो, न बड़ा।

[पृष्ठभूमि से सिंह की गर्जना का स्वर आता है]

यशोधरा—लगता है यह वन हिंसक पशुओं से पूर्ण है।

सिद्धार्थ—तुम भयभीत हो रही हो ? (हँस कर) इन हिंसक जीवों

से अधिक भयंकर आज का मनुष्य है । हिंसक जीव पेट भरने के लिये हत्या करते हैं और मनुष्य साम्राज्य-लिप्सा के लिये ।

[दूर से छन्दक की द्रुत पद-चाप पास आती है]

सिद्धार्थ—क्या बात है, छन्दक ? हाँफ क्यों रहे हो ? और...और यह धनुष तथा तूणीर क्यों ले आये ?

छन्दक—(हाँफता हुआ) अभो-अभो सिंह ने गर्जना की तो कुमार ? धनुष और तूणीर रख लीजिये ।

सिद्धार्थ—किस लिये ? (हँस कर) सिंह को मारने के लिए ? मुझे सिंह से भय नहीं लगता; यदि लगता है रक्त के प्यासे सशस्त्र सैनिक से, जिसका धर्म ही हिंसा है ।

छन्दक—राज्य की रक्षा के लिए युद्ध अनिवार्य होता है, कुमार ? और युद्ध में मरना-मारना हो क्षत्रियों का धर्म है ।

सिद्धार्थ—ऐसे राज्य को धिक्कार है जो हिंसा की नींव पर खड़ा हो । मुझे एं से क्षात्र-धर्म पर भी कोई आस्था नहीं जो मरने-मारने तक ही सीमित हो ।

छन्दक—शाक्य राज्य के भावी.....

सिद्धार्थ—(बीच में ही) तुम भूलते हो, छन्दक ! मेरा जन्म राजा बनने के लिए नहीं हुआ है । यशोधरे, तुम सुन रही हो छन्दक की बातें ।

यशोधरा—(धीमे स्वर में) सुन रही हूँ, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—छन्दक मुझे हिंसक बनाना चाहता है । (धनुष और तूणीर जल में फेंकने की ध्वनि) मैं हिंसा के साधनों को दूर से ही नमस्कार करता हूँ ।

छन्दक—यह क्या ? आप ने धनुष और तूणोर जल में फेंक दिया !
 सिद्धार्थ—तुम चाहते थे मैं उनसे आखेट का आनन्द लेने के लिए
 भोले-भाले जीवों की हत्या करता ।

[पृष्ठभूमि से सिंह की गर्जना का स्वर फिर आता है ।]

यशोधरा—संध्या हो रही है, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—(सकेत समझ कर) ओह, लौटना चाहती हो ! छन्दक,
 रथ ले आओ ।

छन्दक—जो आज्ञा ! (दूर जाता हुआ स्वर) अभी लाया एक
 क्षण में ।

यशोधरा—आर्यपुत्र, मैं.....मैं एक शुभ समाचार सुनाना चाहती
 थी ।

सिद्धार्थ—कहो, क्या समाचार है ?

यशोधरा—मैं...मैं...ओह...कैसे कहूँ ? (रुक कर) मुझे लज्जा
 आती है ।

सिद्धार्थ—ओह, समझा । (रुक कर गम्भीर स्वर में) वन्यन में
 एक कड़ी और जुड़ने वाली है ।

यशोधरा—ऐसा न कहिये, आर्यपुत्र ! क्या कभी मैंने आपके
 चरणों की श्रृंखला बनने की चेष्टा की है ?

सिद्धार्थ—तुम मेरे चरणों की श्रृंखला नहीं, गति हो, यशोधरे !

[दूर से रथ की ध्वनि पास आती है]

छन्दक—रथ प्रस्तुत है कुमार !

सिद्धार्थ—चलो, यशोधरे ! फिर उसी प्रासाद के नरक में चलें ।

[रथ की ध्वनि दूर जाते-जाते पूर्ण फेड़ आउट]

अन्तराल के बाद

माधवी— (लोरी गाती हुई) चन्दा मामा आ जा ! राजा को सुला जा ! चन्दा मामा आजा ! राहुल को सुला जा !!

यशोधरा— (दूर से पास आता हुआ स्वर) माधवी, राहुल सो गया ?

माधवी—अभी-अभी सोया है ।

यशोधरा—अब जा, तू भी विश्राम कर !

माधवी—जातो हूँ । राजकुमार अभी तक नहीं आए ?

यशोधरा—आते ही होंगे ।

माधवी—वे दो-तीन दिन से उदास, चिन्तित और खोये-खोये से लगते हैं ।

यशोधरा—लगता तो मुझे भी ऐसा ही है । रात को ठीक से सो भी नहीं पाते ।

माधवी—आपने कारण पूछा ?

यशोधरा—नहीं । परन्तु आज अवश्य पूछूँगी । न जाने कौन सी वेदना उनके हृदय में घर कर गयी है ।

[दूर से रथ आने की ध्वनि]

माधवी—राजकुमार आ गये । मैं जा रही हूँ । (दूर जाता हुआ स्वर) आज अवश्य पूछियेगा ।

यशोधरा— (धीमे स्वर में स्वगत) न जाने किस चिन्ता में खोये रहते हैं ! आज पूछूँगी, अवश्य पूछूँगी ।

सिद्धार्थ— (दूर से पास आता हुआ स्वर) राहुल सो गया ?

यशोधरा—हाँ, आर्यपुत्र ?

सिद्धार्थ—बालावस्था हो सब से अच्छी है जिसमें न कोई दुःख है,

न चिन्ता ! (धीमे स्वर में) किन्तु उसके बाद यौवन और...
और फिर वृद्धावस्था ! ओह...! क्या यही जीवन है ?

यशोधरा— (व्यग्रता में) आप अस्वस्थ ज्ञात होते हैं । विश्राम
कीजिये !

सिद्धार्थ— (रुखी हँसी हँस कर) विश्राम...? इस जीवन में विश्राम
कहाँ ? जन्म-मरण के तटों के मध्य वहने वाली जीवन की
यह लक्ष्यहीन धार...! ओह...मैं पागल हो जाऊँगा, मैं पागल
हो जाऊँगा !

यशोधरा-- आपको क्या हो गया है, आर्यपुत्र ? दो-तीन दिन से..

सिद्धार्थ— (बीच में ही) वेदना का कीट मेरी आत्मा को काट
रहा है । असह्य पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए मैं छटपटा रहा
हूँ...छटपटा रहा हूँ !

यशोधरा—पति के सुख-दुख में पत्नी का भी भाग होता है । रुके
बताइये, क्या कष्ट है आपको ।

सिद्धार्थ—मेरा व्यथा तुम बाँट न सकोगी, यशोधरे !

यशोधरा—यदि आप बताना नहीं चाहते तो...

सिद्धार्थ—रोष न करो । बतता हूँ । पिछले तीन दिन में मैंने जो
कुछ देखा-सुना उसकी कभा कल्पना भी न की थी । और जो
कुछ देखा-सुना है उसी की पीड़ा मेरे मन को मथ रही है ।
(रुक कर) परसों जब मैं राज-उद्यान जा रहा था तब मार्ग में
...(बोलते-बोलते फेड़आउट । पुनः फेड़इन । राज मार्ग में
चहल-पहल और कोलाहल के बाद “राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म”
“राजकुमार सिद्धार्थ की जय ।” का घोष ।)

सिद्धार्थ—ये लोग मेरा जयघोष क्यों कर रहे हैं ?

छन्दक—आप उन के राजकुमार हैं । प्रजा अपने भावी शासक का

जयघोष कर रही है ।

सिद्धार्थ—परन्तु मेरी जय का अर्थ है किसी और को पराजय !
(रुक कर) मैं तो अभी अपनी दुर्बलताओं को ही नहीं जीत पाया हूँ । इन लोगों से कहो, मेरा जय-घोष न करें ।

छन्दक—यह कैसे हो सकता है, कुमार ! प्रजा की भावना.....

सिद्धार्थ—राजा-प्रजा में यह अंतर क्यों है, छन्दक ? मुझे तो कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखाई देता जो मुझ से भिन्न हो । सभी मेरे समान हैं । और फिर शाक्य राज्य तो प्रजातन्त्र है । हम प्रजा के शासक नहीं, सेवक हैं, छन्दक । फिर यह भेद क्यों, खाई क्यों ?

छन्दक—आपके प्रश्न का उत्तर देना मेरे वस की बात नहीं है, कुमार !

[पृष्ठभूमि से बच्चों का कोलाहल उभरता है]

सिद्धार्थ—वह विचित्र सा व्यक्ति कौन है, छन्दक ?

छन्दक—कहाँ कुमार ?

सिद्धार्थ—वह जिसे बच्चे घेर कर चिढ़ा रहे हैं ।

छन्दक—वह वृद्ध है, कुमार ?

सिद्धार्थ—वृद्ध...? वृद्ध कौन होता है ?

छन्दक—वृद्धावस्था शरीर का धर्म है, कुमार ? एक दिन हम सभी वृद्ध हो जायेंगे ।

सिद्धार्थ—(चितित स्वर में) हम सभी ?

छन्दक—हाँ, कुमार ?

सिद्धार्थ—(दुःखी स्वर में) उस के श्वेत केश, भुर्रियों से भरा मुख, कम्पित शोश, पिचके गाल और झुकी कमर देख कर विश्वास

नहीं होता कि वह कभी युवा रहा होगा ।

छन्दक—उसके दाँत टूट गये हैं, आँखों की ज्योति नष्ट हो गयी है, शरीर की शक्ति क्षीण हो गई है ! कुमार, उस का यौवन वृद्धावस्था द्वारा पराजित हो गया है ।

सिद्धार्थ—(अशान्त होकर व्यथित स्वर में) क्या यौवन इतना दुर्बल होता है कि वृद्धावस्था से पराजित हो जाये ?

छन्दक—हाँ, कुमार !

सिद्धार्थ—क्या.....क्या.....वार्धक्य को जीतने का कोई उपाय नहीं है ?

छन्दक—मेरे ज्ञान में तो नहीं है, कुमार !

सिद्धार्थ—(धीमे स्वर में) युवा, वृद्ध ! वृद्ध, युवा....! श्वेत केश, भुर्रियाँ, टूटे दाँत, झुकी कमर, निस्तेज आँखें, कम्पित शरीर ...ओह....! हम सब की ऐसी दशा होगी....! (निःश्वास छोड़ कर) हम सभी को.....! नहीं, नहीं.....! ऐसा नहीं होगा (दृढ़ स्वर में) ऐसा नहीं होगा ! छन्दक, रथ प्रासाद की ओर मोड़ दो ।

छन्दक—(आश्चर्य से) राज-उद्यान नहीं चलेंगे, कुमार ?

सिद्धार्थ—नहीं ! (निश्चय की दृढ़ता से) मैं जीतूँगा, अवश्य जीतूँगा !

[सिद्धार्थ के अन्तिम वाक्य और दूर जाती हुई रथ की ध्वनि के साथ फेड आउट । फिर फेड इन]

सिद्धार्थ—और तब से मैं यही सोच रहा हूँ कि हम सभी वृद्ध हो जायेंगे । एक दिन तुम्हारे भी कुञ्चित कमनीय केश श्वेत हो जायेंगे; कमल सा खिला मुख भुर्रियों से भर जायेगा, गुलाब-से कपोल पिचक जायेंगे, खंजन सी आँखें निस्तेज हो

जायेंगी, मोतियों से दाँत गिर जाँयेंगे.....

यशोधरा—(हँस कर) इतनी लम्बी भूमिका की क्या आवश्यकता है ? एक वाक्य में ही क्यों नहीं कह देते कि मैं भी वृद्धा हो जाऊँगी ।

सिद्धार्थ—तुम्हारा यौवन नष्ट हो जायगा ।

यशोधरा—जानती हूँ ।

सिद्धार्थ—तुम्हें इसके लिये दुःख नहीं ?

यशोधरा—इस में दुःख केना ? बालपन, यौवन और जरा जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं । सृष्टि का यही नियम है ।

सिद्धार्थ—मैं इस नियम को बदल दूँगा ।

यशोधरा—आयुष्य.....

सिद्धार्थ—मैं वास्तव्य को मिटा दूँगा । (आवेग से) फिर कोई भी वृद्ध नहीं होगा, कोई भी वृद्ध नहीं होगा ।

यशोधरा—(हक-हक कर) क्या.....क्या.....यही आपके दुःख का कारण है ?

सिद्धार्थ—हाँ यशोधरा ! परसों उस वृद्ध को देख कर मैं काँप उठा । मैंने सोचा, ऐसे यौवन को धिक्कार है जो जरा से पराजित हो जाये ।

यशोधरा—तभी आप शीघ्र लौट आये थे !

सिद्धार्थ—हाँ ! और कल मैंने एक रोगी को देखा । वह ज्वर से काँप रहा था । उसकी हड्डी-हड्डी दिखाई दे रही थी । दुर्बल इतना हो गया था कि अपने ऊपर बैठने वाली मस्त्रियों को भी उड़ा सकने में असमर्थ था ।

यशोधरा—फिर.....!

सिद्धार्थ—मैंने सोचा कि ऐसे स्वास्थ्य को धिक्कार है जो रोग से पराजित हो जाये ।

यशोधरा—व्याधियाँ तो शरीर का धर्म हैं, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—मैं व्याधि को मिटा दूँगा । और...और...आज...

यशोधरा...आज भी आप शोग लौट आये थे । आज क्या देखा आप ने ?

सिद्धार्थ—आज मैंने एक मृत व्यक्ति की अर्थी देखी ।

यशोधरा—मरण जीवन की चौथी और अन्तिम अवस्था है । जिस ने जन्म लिया है वह मरेगा भी ।

सिद्धार्थ—यही छन्दक भी कहता था । पर...पर मैं (दृढ़ता से) मृत्यु को जीतूँगा । ऐसे जीवन को धिक्कार है जो मृत्यु के सामने घुटने टेक दे ।

यशोधरा—भगवान् आपका मनोरथ पूर्ण करें ।

सिद्धार्थ—मुझे अवश्य सफलता मिलेगी, यशोधरे ! देखना, फिर न कोई रोगी होगा, न वृद्ध होगा और न मरेगा ।

यशोधरा—किन्तु...किन्तु आप यह करेंगे कैसे ? कोई उपाय सोचा है ?

सिद्धार्थ—यही तो व्यथा है मेरी ! कोई मार्ग नहीं सूझता ।

यशोधरा—फिर.....?

सिद्धार्थ—मार्ग अवश्य मिलेगा ! शोग ही यह अंधकार दूर होगा ।

यशोधरा—भगवान् करे ऐसा ही हो । (रुक कर) अब विश्राम कीजिये ।

सिद्धार्थ—(चौंक कर) विश्राम.....नहीं, मेरी आँखों से निद्रा रुठ गई है । (दूर जाता हुआ स्वर) तुम विश्राम करो, यशोधरे ! मुझे अभी समस्या का समाधान खोजना है ।

[सिद्धार्थ के बोलते-बोलते पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

यशोधरा— (राहुल को कहानी सुनानी हुई) एक था राजा, एक थी रानी । एक दिन राजा अपनी रानी के साथ आखेट खेलते गया । जब उनका रथ घने वन में पहुँचा तब दूर से सिंह की गर्जना सुनाई दी । सुन रहा है न ? तू हाँ...हाँ करता रह, नहीं तो मैं कहानी नहीं सुनाऊँगी । अरे, तू तो सो गया (हक कर) सो, मेरी आँखों के तारे, सो !

माधवी— (दूर से पास हुआ स्वर) आज बिना कहानी सुने ही सो गया मेरा राजकुमार ! (पास आ कर) एक दम पिता पर है राहुल !

यशोधरा— (हस कर) पुत्र पिता पर नहीं पड़ेगा फिर किस पर पड़ेगा ?

माधवी—माँ पर भी पड़ सकता है । (चौंक कर) अरे, आपने तो भोजन का थाल छूआ तक नहीं ।

यशोधरा— भूख नहीं है, माधवी ! (उदास स्वर में) आज दिन भर मन भारी रहा, रह-रह कर चौंक पड़ती हूँ ! न जाने क्या होने वाला है !

माधवी—आप व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं ! (हक कर) हाँ, आपने राजकुमार से उनकी उदासी का कारण पूछा था ?

यशोधरा—हाँ, माधवी ! वे संसार के दुःख से दुःखी हैं, उन्होंने वार्धक्य, रोग और मृत्यु को जीतने का संकल्प किया है ।

माधवी—लगता है ज्योतिषी का कथन सच होकर रहेगा । वे चक्रवर्ती तो.....

यशोधरा—(बीच में ही) शस्त्र-बल से स्थापित साम्राज्य को वे

घृणा की दृष्टि से देखते हैं। देखना, एक दिन उनका राज्य कोटि-कोटि हृदयों पर होगा।

माधवी—आज तो वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

यशोधरा—कदाचित् समस्या का समाधान मिल गया हो।

माधवी—छन्दक कह रहा था कि जब से एक संन्यासी को देखा है तभी से प्रसन्न हैं। मुझे तो भय लगता है.....

सिद्धार्थ—(दूर से पान आता स्वर) मुझे समस्या का समाधान मिल गया, यशोधरे! (पान आकर) अरे, माधवी! तू अभी तक यहीं है?

माधवी—जा रही हूँ, राजकुमार!

यशोधरा—अरे, थाल तो ले जा।

सिद्धार्थ—(एक धण वाद) तुम्हारी दासी भी विचित्र है।

यशोधरा—मैं उसे दासी नहीं, सखी के रूप में देखती हूँ।

सिद्धार्थ—जिस प्रकार छन्दक मेरे सखा के समान है।

यशोधरा—(हँस कर) तभी तो माधवी और छन्दक में घुल-घुल कर जाते होती हैं। (रुक कर) आप कह रहे थे, समस्या का.....

सिद्धार्थ—(बीच में ही) हाँ, यशोधरे! अभी तक अन्धकार में भटक रहा था, अब प्रकाश मिल गया है। अपना मार्ग मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

यशोधरा—तब तो आप लोक कल्याण कर सकेंगे, मानव जाति को सुख-शान्ति का सन्देश दे सकेंगे।

सिद्धार्थ—हाँ, यशोधरे! पर अभी तो स्वयं मुझे ज्ञान प्राप्त करना है; शान्ति की खोज करनी है।

यशोधरा—पर आप तो कह रहे थे.....

सिद्धार्थ—अभी तो मुझे मार्ग दिखाई दिया है। लक्ष्य की प्राप्ति अभी दूर है... (निःश्वास छोड़कर) बहुत दूर हैं। (रुक कर) अच्छा, अब विश्राम करो, यशोधरे ! रात बहुत हो गई है। मैं भी सो रहा हूँ !

[विराम के बाद]

सिद्धार्थ—(धीमे स्वर में स्वगत) यशोधरा सो गयी ! राहुल भी सो रहा है ! पर मेरी आँखों में निद्रा नहीं, मुझे शान्ति की खोज में जाना है; मायामोह के बन्धनों को तोड़ कर यहाँ से दूर... बहुत दूर जाना है !

[पुरुष-कंठ का धीमा हास्य]

सिद्धार्थ—कौन है ? यह कौन हँस रहा है ?

मन—सिद्धार्थ ! मैं तुम्हारा मन हूँ। तुम पत्नी और पुत्र को छोड़कर जाना चाहते हो ?

सिद्धार्थ—हाँ, मैं ज्ञान की खोज में जा रहा हूँ। सारे विश्व का कल्याण मेरा ध्येय है। पत्नी-पुत्र का मोह मुझे पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकता।

मन—(हँस कर) यह तुम्हारा कोरा दम्भ है, सिद्धार्थ ! पत्नी और पुत्र विश्व के बाहर नहीं हैं। उनके प्रति कर्त्तव्य पालन ही सबसे बड़ा धर्म है।

सिद्धार्थ—मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुका ! राहुल को जन्म देकर मैं ऋण से मुक्त हो गया।

मन—यदि ऐसा है तो चोरों की भाँति छिपकर क्यों जा रहे हो ? यशोधरा से विदा लेकर जाओ ! क्या...क्या...तुम समझते हो कि वह तुम्हें रोकने की चेष्टा करेगी ?

सिद्धार्थ—मुझे यशोधरा पर पूरा विश्वास है। मैं जानता हूँ, वह

हँसते-हँसते विदा देगी पर मैं...मैं...स्वयं अपनी दुर्बलता से डरता हूँ। नहीं, मैं पत्नी-पुत्र को सोता छोड़ कर ही जाऊँगा।
 मन (हँस कर) तुम्हें स्वयं अपने पर विश्वास नहीं ! (हँसता है)
 सिद्धार्थ — चले जाओ, मैं कहता हूँ, चले जाओ यहाँ से ? तुम कौन होते हो मेरी हँसी उड़ाने वाले !

[हाम्य का स्वर दूर जाकर विलीन हो जाता है।]

सिद्धार्थ—ओह, इस शीत में भी मैं स्वेद से भोगा जा रहा हूँ !
 मुझे क्या हो रहा है ? दुर्बलता...नहीं मैं दुर्बल नहीं हूँ, मैं दुर्बल नहीं हूँ। (दूर जाता हुआ स्वर) गौतम गोपा का नहीं सारे संसार का है। मैं जा रहा हूँ...मैं जा रहा हूँ !...
 [सिद्धार्थ बोलते-बोलते पूर्ण फेड़ आउट]

अन्तराल के बाद

यशोधरा—(धीमे स्वर में सन्मग्न) चले गये, आर्यपुत्र, शान्ति की खोज में चले गये ! भगवान उन्हें बल दे, वे अपने उद्देश्य में सफल हों।

माधवी—(दूर से पस आता हुआ स्वर) छन्दक लौट आया है।

यशोधरा—उसे लौटना ही चाहिये था, माधवी ! साधना के पथ पर पत्नी, पुत्र, सखा किसी की भी आवश्यकता नहीं होती।

माधवी—महाराज राजकुमार की खोज में दूत भेजने वाले हैं।

यशोधरा—उन्हें मना कर दे, माधवी ! वे शान्ति की खोज में गये हैं, संसार के कल्याण के लिए गये हैं, हम सब के कल्याण के लिए गये हैं। उनके पथ में बाधा डालना ठीक नहीं।

माधवी—यह क्या कह रही हैं आप ? पुत्र-वियोग को माता-पिता

का हृदय कैसे सहन कर सकता है ।

यशोधरा—जैसे पत्नी का हृदय पति-वियोग को सहन कर रहा है ।
स्वार्थी बन कर हमें उनके परमार्थ-पथ पर शूल नहीं बिछाने चाहियें ।

माधवी—अपराध क्षमा हो, आप तो ऐसी बातें कर रही हैं जैसे वे आप से विदा लेकर गये हों ।

यशोधरा—कह कर जाने की क्या आवश्यकता थी ? मेरा अहो-भाग्य है जो उन्होंने मुझे इस योग्य समझा कि उनके जाने के बाद अपना कर्तव्य पूरा कर सकूँगी । भगवान् करे उनका मार्ग-मंगलमय हो; उन्हें सिद्धि प्राप्त हो; उनका यश चारों ओर फैले !

माधवी—भगवान् करे ऐसा ही हो । (रुक कर) आप को समझना बहुत कठिन है । अपनी हार पर...

यशोधरा—हार-जीत की परिभाषा तू क्या जाने, माधवी ! जिसे तू हार समझ रही है वही मेरी महान् विजय है । जा, जाकर महाराज से कह दे कि उनकी खोज के लिए चर न भेजें । सिद्धि प्राप्त कर के वे स्वयं आ जायेंगे ।

माधवी—आपको विश्वास है ?

यशोधरा—हाँ, माधवी ! वे हम माया-मोह में फँसे प्राणियों का उद्धार करने अवश्य आयेंगे । जा, अब देर न कर । महाराज से मेरा निवेदन अभी कह दे ।

माधवी—(दूर जाता हुआ स्वर) जा रही हूँ । कहना मेरा काम है, मानना न मानना महाराज के हाथ में है ।

[माधवी के अन्तिम वाक्य के साथ ही पूर्ण फेड आउट]

अन्तराल के बाद

यशोधरा—(धीमे स्वर में स्वगत) मेरे स्वामी को सिद्धि प्राप्त हुई;
उनका यश चारों ओर फैल रहा है। मैं कितनी सौभाग्य-
शालिनी हूँ.....!

माधवी—(दूर से पास आता हुआ स्वर) आपकी मनःकामना पूर्ण
हुई। (प.स आकर) राजकुमार को ज्ञान-लाभ हुआ, उनका
ख्याति चारों दिशाओं में फैल रही है।

यशोधरा—हाँ, माधवी! मैं बहुत प्रसन्न हूँ! उनको कीर्ति-गाथायें
सुन कर मुझे परम संतोष मिलता है।

माधवी—बड़े-बड़े नरेश उनके चरणों में सिर झुकाते हैं।

यशोधरा—तू ही देख ले। जिसके आगे मगधराज और काशल-
नरेश तक नतमस्तक हों वह चक्रवर्ती नहीं तो और क्या है?

माधवी—आप सत्य कह रही है, वे चक्रवर्ती से भी महान् हैं!
मैं कहती हूँ वे मनुष्य नहीं, देवता हैं; (रुक कर) ज्ञान की
खोज में वे पहले वैशाली के प्रसिद्ध दार्शनिक आलारकाजाम
के पास गये। वहाँ से राजगृह के दार्शनिक रुद्रक के पास
गये फिर.....फिर निरंजना के तट पर गया के घने वन
में कठोर तप किया। मैं कहती हूँ ये सब उनका लीलायें थीं,
लीलायें। वे पहले से ही बुद्ध थे।

यशोधरा—(हँस कर) अच्छा.....!

माधवी—वे तो अन्धे विश्व को यह दिखाना चाहते थे कि मोक्ष
न तो भौतिक भोग से मिल सकता है और न तप-उपवास
से न शरीर को सुखाने वाले योग से?

यशोधरा—(प्रसन्न स्वर में) उन्हीं के शब्दों को क्यों नहीं दुहरा

देती कि वीणा के तार यदि अधिक ढीले होंगे तो भंकार उत्पन्न नहीं होगी और यदि अधिक कसे जायेंगे तो टूट जायेंगे ।

माधवी—इसी प्रकार मोक्ष-प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही सही है । शान्ति, अहिंसा, सदाचार और सत्य के दृढ़ बन कर वे अपना संदेश सब को सुना रहे हैं । भगवान् जाने, कभी हमारे भी भाग्य खुलेंगे या नहीं, कभी हमें भी उनकी वाणी का अमृत मिलेगा या नहीं ।

यशोधरा—अवश्य मिलेगा, माधवी ! श्रद्धा और विश्वास रख !

[पृष्ठभूमि से कोलाहल और फिर 'भगवान् बुद्ध की जय' का घोष]

माधवी—यह घोष कैसा ?

छन्दक—(दूर से पास आता हुआ स्वर) भगवान् बुद्ध कपिलवस्तु में पधारे हैं । वे प्रासाद की ओर आ रहे हैं !

यशोधरा—(हर्ष से) मेरे अहोभाग्य...! जाओ, तुम लोग उनके दर्शन से अपना जीवन सफल करो ।

माधवी—आप नहीं चलेंगे ?

यशोधरा—यदि भक्त की भावना में बल होगा तो भगवान् स्वयं यहाँ चले आयेंगे, माधवी ! जाओ, तुम लोग जाओ ! राहुल बेटा, जा तू भी जा ! नहीं जायेगा ? अच्छा, तू मेरे साथ ही रह !

माधवी—
छन्दक—(दूर जाते हुए सम्मिलित स्वर) भगवान् बुद्ध की जय !

यशोधरा—(धीमे स्वर में) भगवान् बुद्ध की जय ।

सिद्धार्थ—(दूर से पास आता हुआ स्वर) यशोधरे ! मैं आ गया ।

यशोधरा—दासी का प्रणाम स्वीकार हो ! बेटा राहुल, झुक कर

चरण स्पर्श कर !

सिद्धार्थ—कल्याण हो !

यशोधरा—भगवन् ! मुझे दीक्षा दीजिये !

सिद्धार्थ—तुम्हें दीक्षा दूँ ? (रुक कर) तुम तो मेरी शक्ति हो ।

यशोधरा—परन्तु नारी तो पुरुष की दुर्बलता होती है, भगवन् !

सिद्धार्थ—दुर्बल पुरुष होता है, नारी नहीं ! तुम्हें त्याग कर मैं चला गया, पर तुम्हारी स्नेह-छाँह सदैव मेरे साथ रही ! तप और उपवास से जब मैं मृतप्राय हो गया था तब तुम्हीं ने सुजाता के रूप में मुझे खीर खिला कर मेरी रक्षा की थी । यशोधरे, तुम मेरी जीवनदात्री हो, गुरु हो, (रुक कर) अब चलता हूँ, देवि ! बस यही कहने आया था ।

यशोधरा—क्षण भर रुकिये, भगवन् ! आप को खाली हाथ नहीं जाने दूँगी ! देने के लिये और कुछ तो है नही; एक राहुल, है, उसी को श्रीचरणों में अर्पित करती हूँ ।

सिद्धार्थ—तुम धन्य हो, देवि ! गौतम की गोपा का यह दान विश्व कभी न भूलेगा !

[पृष्ठभूमि से “बुद्ध शरणं गच्छामि” “धम्म शरणं गच्छामि ।” “संघं शरणं गच्छामि ।” का स्वर उभरता है । स्वर पास आता है और पृष्ठभूमि में जा कर विलीन हो जाता है ।]

